अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका — सितम्बर २०१९

अग्निशिखा सितम्बर २०१९ वर्ष ५०, अंक २, पूर्णांक ५८९

विषय-सूची

प्रार्थना	श्रीमाँ	३
भारत माता	'श्रीमातृवाणी' से	५
दुर्गा स्तोत्र	श्रीअरविन्द	६
सारा जीवन ही योग है	'लाल कमल' पुस्तक से	८
योग-पथ पर	'माता' पुस्तक से	१२
भवानी भारती	'भवानी भारती' पुस्तक से	२३
भारत के बारे में	'श्रीमातृवाणी' से	२७
श्रीमाँ के साथ वार्तालाप	'श्रीमातृवाणी' से	३२

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		३८
"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र	'श्रीमातृवाणी' से	४१
'योग के तत्त्व' : चैत्य उद्घाटन	श्रीअरविन्द	४५
स्वर-शिल्पी	हृदय	४८
'नयी कोंपलें' : यादें (कविता)	शाम्भवी	५१
मुसाफ़िर चल (कविता)	आकाश साहा	५२
वे अनपढ़ संसार को क्या नहीं सिखा गये!	वन्दना	५३

मुखपृष्ठ—भारत माता की कांस्य मूर्ति

२० फ़रवरी १९७८ में उच्च न्यायालय के मैदान में २१० से.मी. ऊँची कांस्य-मूर्ति स्थापित की गयी थी। इसमें भारत माता को एक स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है जिसने भारत के युवा गणतन्त्र को एक बालक के प्रतीक-रूप में अपने आश्रय में लिया हुआ है और वह भारत-भूमि के क़ानून को खुली पुस्तक के रूप में अपने हाथों में थामे हुए है। पुस्तक पर चित्रित तराज़ू सभी के लिए समान न्याय का द्योतक है। इस मूर्ति को गढ़ा है प्रसिद्ध शिल्पी श्री चिन्तामणि कर ने।

प्रार्थना

२१ मार्च १९१४

हर सवेरे मेरी अभीप्सा तीव्रता के साथ तेरी ओर उठती है और अपने सन्तुष्ट हृदय की नीरवता में मैं यह माँग करती हूँ कि 'प्रेम' का तेरा विधान प्रकट हो, कि तेरी इच्छा अभिव्यक्त हो। और उसकी पूर्वाशा में मैं आनन्द और प्रशान्तता के साथ उन परिस्थितियों के साथ लग जाती हूँ जो इस विधान और इस इच्छा को अभिव्यक्त करेंगी।

ओ, बेचैन क्यों हुआ जाये और यह चाह क्यों की जाये कि हमारे लिए वस्तुएँ अमुक दिशा ही अपनाएँ, कोई और नहीं! यह निश्चय ही क्यों किया जाये कि अमुक परिस्थितियों का संयोजन ही सर्वोत्तम सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति होगा और तब एक कटु संघर्ष में कूद पड़ना ताकि ये सम्भावनाएँ चरितार्थ हों! अपनी सारी ऊर्जा को आन्तरिक विश्वास की शान्ति में केवल यही चाहने में क्यों न लगाया जाये कि हर जगह, हमेशा, सभी कठिनाइयों पर, समस्त अन्धकार और समस्त अहंकार पर तेरे विधान की विजय हो! यह मनोभाव अपनाना सीखते ही क्षितिज कितना विस्तृत हो जाता है; कैसे सारी चिन्ताएँ ग़ायब हो जाती हैं और अपना स्थान सतत प्रकाश, निःस्वार्थता की सर्वशक्तिमत्ता को दे देती हैं! हे प्रभो, जो तू चाहता है वही चाहने का अर्थ है, सदा तेरे साथ सायुज्य में रहना, सभी आकस्मिकताओं से मुक्त होना, सभी संकीर्णताओं से बच निकलना, अपने फेफड़ों को शुद्ध और स्वास्थ्यकर हवा से भर लेना, व्यर्थ की समस्त थकानों से पिण्ड छुड़ाना, सभी बोझिल भारों से हलका होना ताकि हम पाने-योग्य एकमात्र लक्ष्य की ओर तेज़ी से दौड़ सकें : यह है तेरे दिव्य 'विधान' की जय!

हे प्रभो, आज सवेरे मैं कितने आनन्द और विश्वास के साथ तेरा अभिवादन करती हूँ!...

—श्रीमाँ

भारत भविष्य के लिए कार्य करे और सबका नेतृत्व करे।
इस तरह वह जगत् में अपना सच्चा स्थान फिर से पा लेगा।

—श्रीमाँ

भारत माता

किसी देश का लक्ष्य मानसिक रूप में, बाह्य चेतना की अहंकारयुक्त और अज्ञानमूलक रुचियों द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता। क्योंकि ऐसा होने से राष्ट्रों में केवल संघर्ष का क्षेत्र ही बदलेगा, संघर्ष फिर भी बना रहेगा, और शायद अधिक तीव्र रूप में।

जिस प्रकार व्यक्ति की अपनी अन्तरात्मा होती है जो उसकी वास्तविक सत्ता है और उसके भविष्य को थोड़े-बहुत प्रत्यक्ष रूप में परिचालित करती है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की भी अन्तरात्मा होती है, उसकी सच्ची सत्ता वही है और वही उसकी भवितव्यता का परदे के पीछे से निर्माण करती है : यही देश की आत्मा है, राष्ट्रीय प्रतिभा है, जाति की भावना है, राष्ट्रीय अभीप्सा का केन्द्र है, किसी देश के जीवन में जो कुछ सुन्दर, उत्कृष्ट, महान् और उदार होता है उसका मूल स्रोत है। सच्चे देश-भक्त प्रत्यक्ष सत्ता के रूप में इसकी उपस्थिति अनुभव करते हैं। इसी को भारतवर्ष में एक दिव्य सत्ता का-सा रूप दे दिया गया है; जो लोग अपने देश से सच्चा प्रेम करते हैं वे इसे भारत माता कह कर पुकारते हैं और अपने देश के हित के लिए इसी के आगे अपनी दैनिक प्रार्थना करते हैं। यह भारत माता ही देश के सच्चे आदर्श को, विश्व में उसके सच्चे उद्देश्य को सांकेतिक रूप में व्यक्त करती है, उसे मूर्तिमान् करती है।

भारतवर्ष के कुछ विशिष्ट विचारक तथा अध्यात्मचेता श्रेष्ठ जन तो इसे विश्वमाता की ही एक विभूति मानते हैं, जैसा कि श्रीअरविन्द के *'दुर्गा-स्तोत्र'* से प्रकट होता है।

हम अन्य देशों में भी राष्ट्रीय आत्मा के लिए इसी प्रकार का आदर-भाव, उसके सर्वोच्च आदर्श की अभिव्यक्ति के लिए योग्य यन्त्र बनने की ऐसी ही अभीप्सा, प्रगति और पूर्णता के लिए ऐसी ही लगन देखना चाहेंगे जो प्रत्येक जाति को अपनी राष्ट्रीय आत्मा के साथ एकाकार होने और इस प्रकार अपने सच्चे स्वरूप और कार्य को जानने के लिए उत्साहित करती है। इससे प्रत्येक मनुष्य, इतिहास की सभी दुर्घटनाओं के होते हुए भी, एक सजीव तथा अमर सत्ता बन जायेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ४८-५०, ५०-५१

दुर्गा स्तोत्र

(श्रीअरविन्द ने यह स्तोत्र मूल बंगला में लिखा था। यहाँ शब्दों के कम-से-कम हेर-फेर के साथ प्रकाशित किया जा रहा है—सं.)

मातः दुर्गे! सिंहवाहिनि, सर्वशक्तिप्रदायिनि, मातः शिवप्रिये! तुम्हारी ही शक्ति के अंश हम भारतवर्ष के युवक तुम्हारे मन्दिर में आसीन, प्रार्थना करते हैं। सुनो मातः, भारतवर्ष में प्रकट होओ, प्रकाशमान होओ।

मातः दुर्गे! हम युग-युग से मानव-शरीर में अवतीर्ण होकर जन्म-जन्मान्तर तुम्हारे ही कार्य सम्पन्न कर तुम्हारे आनन्दधाम में लौट जाते हैं। इस बार भी जन्म लेकर तुम्हारे ही कार्यव्रती हैं हम, सुनो मातः, भारतवर्ष में प्रकट होओ, हमारी सहायक होओ।

मातः दुर्गे! सिंहवाहिनि, त्रिशूलधारिणि, कवच से आवृत सुन्दर शरीर में जयदायिनि मातः, भारत तुम्हारी प्रतीक्षा में है, तुम्हारी उस मंगलमयी मूर्ति को देखने को उत्सुक है वह। सुनो मातः, भारतवर्ष में प्रकट होओ; प्रकाशमान होओ।

मातः दुर्गे! बलदायिनि, प्रेमदायिनि, ज्ञानदायिनि, शक्तिस्वरूपिणि, भीमे, सौम्य-रौद्र-रूपिणि! जीवन-संग्राम और भारत-संग्राम में हम तुमसे प्रेरित योद्धा हैं, दो माँ, प्राण और मन में असुर की शक्ति दो, असुर का उद्यम दो, मातः, हृदय में, बुद्धि में, देवता का चरित्र दो, देवता का ज्ञान दो।

मातः दुर्गे! जगत्-श्रेष्ठ भारतजाति, निबिड अन्धकार में आच्छन्न थी। तुम ही माँ, क्षितिज पर धीरे-धीरे उदित हुईं, तुम्हारे स्वर्गिक शरीर से तिमिर-विनाशी आभा में उषा का प्रकाश हुआ। आलोक का विस्तार करो हे मातः, तिमिर का विनाश करो।

मातः दुर्गे! श्यामला, सर्वसौन्दर्यालंकृता, ज्ञान-प्रेम-शक्ति की आधार तुम्हारी विभूति, भारतवर्ष शक्ति संहरण करके आत्मगोपन किये हुए था। अब वह युग आ गया है, वह दिवस आ गया है, जब भारतवर्ष का भार अपने कन्धों पर लिये भारत जननी उठ खड़ी हुई है, आओ माँ, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! हम तुम्हारी सन्तान हैं, तुम्हारे प्रसाद से, तुम्हारे प्रभाव से महान् कार्य के, महान् भाव के उपयुक्त हों। मातः, क्षुद्रता का विनाश करो,

स्वार्थ का विनाश करो, भय का विनाश करो।

मातः दुर्गे! कालीरूपिणि, नरमुण्डमालिनि, दिगम्बरि, कृपाणपाणि, असुरविनाशिनि देवि! क्रूर निनाद से अन्तः-स्थित रिपु का विनाश करो। वह हमारे अन्दर बिलकुल जीवित न रहे, हम विमल-निर्मल बनें, हे मातः, यही हमारी प्रार्थना है, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! स्वार्थ से, भय से, क्षुद्राशयता के कारण भारत म्रियमाण है। मातः, हमें महान् बनाओ, महत्प्रयासी बनाओ, उदारचेता बनाओ, सत्य-संकल्प बनाओ और हम अल्पाशी, निश्चेष्ट, आलसी और भयभीत न हों।

मातः दुर्गे! योगशक्ति का विस्तार करो, तुम्हारी प्रिय आर्य सन्तान, जिनकी शिक्षा, चरित्र, मेधाशक्ति, भक्तिश्रद्धा, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्यज्ञान लुप्त हो गये हैं इन सबका हमारे अन्दर विकास कर जगत् में वितरण करो। मानव सहायता के लिए, हे दुर्गतिनाशिनि, जगदम्बे, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! अन्तःस्थित रिपु का संहार कर बाहर की विघ्न-बाधाओं को निर्मूल करो। बलशाली, पराक्रमी, उन्नतचेता जाति भारत के पवित्र कानन में, उर्वर क्षेत्र में, गगनसहचर पर्वततल में, पूतसलिला नदी के तट पर, एकता में, प्रेम में, सत्य-शक्ति में, शिल्प में, साहित्य में, विक्रम में, ज्ञान में श्रेष्ठ होकर निवास करे। मातृचरणों में यही प्रार्थना है। हे मातः, प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! हमारे शरीर में योग-बल से प्रवेश करो। तुम्हारे यन्त्र हैं हम, हम तुम्हारे अशुभ-विनाशी खड्ग, अज्ञान-विनाशी प्रदीप हों। भारतवर्ष के युवकगण की इस इच्छा को पूरा करो। यन्त्री होकर यन्त्र चलाओ, अशुभ का हनन करने वाली बन कर अपना खड्ग घुमाओ, ज्ञानदीप्तप्रकाशिनी बन कर प्रदीप दिखाओ। प्रकट होओ।

मातः दुर्गे! तुम्हें पाकर फिर से विसर्जन न करेंगे, श्रद्धा, भक्ति और प्रेम की डोर में बाँध कर रखेंगे, हमारे मन, प्राण, शरीर में प्रकट होओ।

वीर-मार्गप्रदर्शिनि, आओ! अब तुम्हारा विसर्जन न करेंगे। हमारा सारा जीवन अविच्छिन्न दुर्गापूजा है, हमारा सम्पूर्ण कार्य अविरत, पवित्र, प्रेममय, शक्तिमय मातृसेवाव्रत हो, यही प्रार्थना है, हे मातः, भारतवर्ष में प्रकट होओ, प्रकाशमान होओ।

—श्रीअरविन्द

सारा जीवन ही योग है

श्रीअरविन्द और माताजी के अनुसार सारा जीवन ही योग है। अगर हम इसमें सचेतन रूप से भाग लें तो परिणाम जल्दी आ सकता है। जड़-पदार्थों से लेकर पशु-जगत् तक प्रकृति का योग चलता रहता है जिसमें वनस्पति, पशु आदि का सक्रिय सहयोग नहीं मिलता। मनुष्य को यह विशेषाधिकार दिया गया है कि वह इस योग में सचेतन और सक्रिय भाग ले सकता है।

मनुष्य आदि काल से ऊपर उठने का प्रयास करता आया है, भगवान् के साथ मिलने और एक होने के लिए नाना प्रकार की कोशिशें करता आया है और ये कोशिशें ही विभिन्न योग-पद्धतियाँ हैं। प्रायः सभी का लक्ष्य रहा है :

लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल।।

माताजी के अनुसार अन्य योग जहाँ समाप्त होते हैं, श्रीअरविन्द का योग वहाँ से शुरू होता है। आइये, श्रीअरविन्द के शब्दों में ही उनके योग के उद्देश्य को जानने की कोशिश करें :

"हम जिस योग की साधना कर रहे हैं वह केवल हमारे लिए नहीं बल्कि भगवान् के लिए है; इसका उद्देश्य है, भगवान् की इच्छा को जगत् में साधित करना, आध्यात्मिक रूपान्तर लाना और मानवजाति के जीवन में, उसके मन, प्राण और शरीर की प्रकृति में एक दिव्य प्रकृति और दिव्य जीवन को उतार लाना। उसका उद्देश्य व्यक्तिगत मुक्ति नहीं है, यद्यपि मुक्ति योग की एक आवश्यक अवस्था है, बल्कि उसका उद्देश्य है, मानव-सत्ता की मुक्ति और उसका रूपान्तर। हमारा उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से आनन्द पाना नहीं है, बल्कि हमारा उद्देश्य है दिव्य आनन्द को—ईसा के स्वर्गीय राज्य को, हमारे सत्ययुग को—पृथ्वी पर उतार लाना। मोक्ष की हमें व्यक्तिगत रूप से कोई आवश्यकता नहीं; कारण आत्मा तो नित्य मुक्त है और बन्धन केवल भ्रम है। हम तो बद्ध होने का अभिनय-मात्र करते हैं, वास्तव में हम बद्ध नहीं हैं। जिस समय भगवान् की इच्छा होगी उसी समय हम मुक्त हो सकते हैं, क्योंकि वे, हमारी परम आत्मा ही, इस लीला के अधीश्वर हैं और उनकी कृपा और आज्ञा के बिना कोई अन्तरात्मा इस लीला से

अलग नहीं हो सकती। बहुधा हमारे अन्दर यह भगवान् की ही इच्छा होती है कि मन के द्वारा अज्ञान का, द्वन्द्वों का, हर्ष और शोक का, सुख और दुःख का, पुण्य और पाप का, भोग और त्याग का रसास्वादन किया जाये। बहुत-से देशों में भगवान् युगों तक योग का कभी विचार तक नहीं करते, बल्कि इसी लीला को बिना थके शताब्दियों खेला करते हैं। इसमें कोई बुराई नहीं, ऐसी कोई बात नहीं जिसे हम दोष दें या जिससे मुँह मोड़ें—यह तो भगवान् की लीला है। बुद्धिमान् वही है जो इस सत्य को पहचानता है और अपनी स्वतन्त्रता को जानते हुए भी भगवान् की इस लीला में भाग लेता है और इस लीला की पद्धति में परिवर्तन के लिए उनके आदेश की प्रतीक्षा करता है।

आदेश आ गया है। भगवान् सदा ही अपने लिए एक ऐसा देश चुन कर रखते हैं जिसमें थोड़े या बहुत-से लोग सब प्रकार की सम्भावनाओं और विपत्तियों में से गुज़रते हुए उच्चतर ज्ञान को सदा-सर्वदा सुरक्षित रखते हैं, और वर्तमान काल में, कम-से-कम इस चतुर्युग में, वह देश है भारतवर्ष। जब कभी वह अज्ञान का, द्वन्द्वों का, संघर्ष और क्रोध और दुःख और दुर्बलता और स्वार्थपरता का, तामसिक सुखों का, थोड़े में कहें तो कलि की लीला का पूरा-पूरा उपभोग करना चाहते हैं तब वे भारत के ज्ञान को धुँधला बना देते हैं और उसे दुर्बलता और अवनति के गढ़े में डाल देते हैं ताकि वह अपने-आपमें चला जाये और उनकी लीला की इस गति में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करे। जब वे इस कीचड़ से ऊपर उठना चाहते हैं कि नर में जो नारायण हैं वे फिर एक बार शक्तिशाली, ज्ञानवान और आनन्दपूर्ण बन जायें तब वे फिर से भारतवर्ष के ऊपर ज्ञान की वर्षा करते और उसे ऊपर उठाते हैं जिससे वह (भारतवर्ष) समस्त संसार को ज्ञान दे सके और उस ज्ञान के अवश्यम्भावी परिणाम—बल, बुद्धि और आनन्द—दे सके। जब ज्ञान की गति संकुचित हो जाती है तब भारत के योगी संसार से अलग होकर केवल अपनी मुक्ति या आनन्द के लिए या अपने कुछ शिष्यों की मुक्ति के लिए योगाभ्यास करते हैं, परन्तु जब ज्ञान की गति पुनः प्रसारित होती है और उसके साथ-ही-साथ भारत की आत्मा भी प्रसारित होती है तब वे फिर सामने आ जाते हैं और संसार में तथा संसार के लिए कार्य करते हैं। तब जनक (मिथिला के राजा जो

राजसिंहासन पर बैठे हुए भी योगी थे), अजातशत्रु (युधिष्ठिर का एक और नाम) और कार्तवीर्य (हैहयवंश के सुप्रसिद्ध राजा जो सुदर्शन-चक्र के अवतार माने जाते थे) जैसे योगी फिर से संसार के राजसिंहासनों पर आरुढ़ होते हैं और विभिन्न राष्ट्रों का शासन करते हैं।

मनुष्य में भगवान् की लीला सदा चक्राकार घूमती रहती है, सत्ययुग से कलियुग की ओर और फिर कलियुग में से होती हुई सत्ययुग की ओर जाती है। स्वर्णयुग से लौहयुग की ओर और फिर लौहयुग से होती हुई स्वर्णयुग की ओर। आधुनिक भाषा में सत्ययुग संसार का वह काल है जिसमें एक प्रकार का स्थायी और पर्याप्त सामञ्जस्य उत्पन्न होता है और मनुष्य कुछ समय के लिए, कुछ अवस्थाओं और सीमाओं के अन्तर्गत, अपनी सत्ता की पूर्णता को प्राप्त करता है। सामञ्जस्य एक सुप्रतिष्ठित पवित्रता की शक्ति के द्वारा उसकी प्रकृति में विद्यमान रहता है, परन्तु उसके बाद वह भंग होने लगता है और त्रेतायुग में इसे मनुष्य व्यष्टिगत और समष्टिगत संकल्पशक्ति के द्वारा सँभाले रखता है, आगे चल कर यह और भी अधिक टूट जाता है और द्वापर युग में मनुष्य बौद्धिक विधान और सार्वजनिक सम्मति और शासन के द्वारा इसे सँभाले रखने का प्रयास करता है; फिर कलियुग में आकर यह पूर्ण रूप से ढह जाता है और नष्ट हो जाता है। परन्तु कलि एकदम अशुभ ही नहीं है, इसी में एक नवीन सत्ययुग, एक दूसरे सामञ्जस्य, एक उच्चतर पूर्णता के लिए आवश्यक अवस्थाओं का उत्तरोत्तर निर्माण होता है। इस कलियुग में, जो समाप्त हो चुका है पर जिसके प्रभाव अभी तक चल रहे हैं लेकिन अब समाप्ति पर हैं, प्राचीन ज्ञान और संस्कृति का बहुत अधिक नाश हो गया है। उसके केवल इने-गिने अंश ही वेदों, उपनिषदों और अन्यान्य धर्मग्रन्थों में तथा संसार की अस्तव्यस्त परम्पराओं के रूप में हमारे लिए बचे हुए हैं। परन्तु अब वह समय आ गया है जब ऊपर की ओर जाने के लिए पहला पग उठाया जा सकता है, एक नवीन सामञ्जस्य और पूर्णता को स्थापित करने के लिए प्रथम प्रयास किया जा सकता है। यही कारण है कि आज मनुष्य के समाज, ज्ञान, धर्म और सदाचार की पूर्णता के विषय में इतनी तरह के विचार फैले हुए हैं परन्तु सच्चा सामञ्जस्य अभी तक नहीं मिला।

केवल भारतवर्ष ही इस सामञ्जस्य को खोज पायेगा, क्योंकि मनुष्य

की वर्तमान प्रकृति में केवल थोड़ा-बहुत हेर-फेर करके ही नहीं, बल्कि उसका परिवर्तन करके ही यह सामञ्जस्य विकसित किया जा सकता है और ऐसा परिवर्तन योग के बिना सम्भव नहीं है। आजकल मनुष्य और सभी वस्तुओं की प्रकृति बेमेल हो गयी है, उसकी सुरसंगति बेसुरी हो गयी है। उसे सामञ्जस्यपूर्ण बनाने के लिए मनुष्य के समूचे हृदय, कर्म और मन को परिवर्तित होना होगा, पर अन्दर से, बाहर से नहीं। यह परिवर्तन न तो राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं के द्वारा होगा न धार्मिक मतवादों तथा दर्शन-शास्त्रों के ही द्वारा। बल्कि होगा, अपने अन्दर और जगत् में भगवान् की उपलब्धि करके और उस उपलब्धि के द्वारा जीवन को एक नये ही साँचे में ढाल कर। यह परिवर्तन केवल पूर्णयोग के द्वारा ही हो सकता है। एक ऐसे योग के द्वारा जिसकी साधना किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए नहीं, भले ही वह प्रयोजन मुक्ति या आनन्द की प्राप्ति क्यों न हो, बल्कि अपने अन्दर और दूसरों के अन्दर दिव्य मानवता को चरितार्थ करने के लिए की जाती है। इस उद्देश्य के लिए हठयोग और राजयोग की साधनाएँ पर्याप्त नहीं हैं और न त्रिमार्ग (ज्ञान, कर्म और भक्ति) से ही काम चल सकता है, इसके लिए हमें और भी ऊपर उठना होगा और अध्यात्म योग का आश्रय ग्रहण करना होगा। इस अध्यात्म योग का मूल सिद्धान्त है, ज्ञान की दृष्टि से उन समस्त वस्तुओं को, जिन्हें हम देखते हैं या जिन्हें हम देखते तो नहीं पर जिनका हमें भान है—मनुष्य, वस्तुएँ, स्वयं हम, घटनाएँ, देवता, दानव और देवदूत—इन सबको एक परब्रह्म के रूप में अनुभव करना और कर्म तथा भाव की दृष्टि से उन परात्पर पुरुष को—जो विश्वातीत, अनन्त और विश्वव्यापी हैं—पूर्ण आत्म-समर्पण करना जो एक ही साथ साकार और निराकार हैं, सान्त और अनन्त हैं, अपने-आपको सीमित रखने वाले और असीम हैं, एक और बहु हैं तथा ऊपर के देवताओं को ही नहीं, बल्कि यहाँ नीचे के मनुष्य, कीट और मिट्टी के ढेले तक को अपनी सत्ता से परिपूरित करते हैं। समर्पण पूर्ण होना चाहिये, कुछ भी बचा कर नहीं रखना चाहिये, कोई कामना-वासना, कोई माँग, कोई राय, यही होगा और वह नहीं हो सकता, यही होना चाहिये और वह नहीं होना चाहिये—ऐसी कोई भावना नहीं रखनी चाहिये, सब कुछ अर्पण कर देना चाहिये। हृदय को सभी कामनाओं से और बुद्धि को सभी आग्रहों से

शुद्ध कर देना चाहिये। हर द्वन्द्व को त्याग देना चाहिये, समस्त दृश्य और अदृश्य जगत् को गुप्त प्रज्ञा, शक्ति और आनन्द की परम अभिव्यक्ति के रूप में जानना चाहिये और समस्त सत्ता को उस तरह समर्पित कर देना चाहिये जैसे कोई इंजन ड्राइवर के हाथों में निष्क्रिय हो जाता है ताकि दिव्य प्रेम, सामर्थ्य और पूर्ण प्रज्ञा काम कर सकें और अपनी दिव्य लीला को चरितार्थ कर सकें। अहंकार को एकदम मिटा देना चाहिये ताकि अन्ततः भगवान् हमारे लिए जैसा चाहते हैं उसके अनुसार हम पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति और ज्ञान तथा दिव्य सत्ता की पूर्ण क्रियाशीलता पा सकें...।"

—'लाल कमल' पुस्तक से, पृ. २१०-१३

योग-पथ पर

(१)

दो शक्तियाँ हैं जिनके संयोग से ही वह महान् और कठिन कार्य पूरा हो सकता है जो हमारी साधना का लक्ष्य है। एक है दृढ़ और अटूट अभीप्सा जो नीचे से पुकारती है और दूसरी है भगवत्कृपा जो ऊपर से उसका उत्तर देती है। किन्तु परम भगवत्कृपा केवल प्रकाश और सत्य की स्थितियों में ही कार्य करेगी, असत्य और अज्ञान द्वारा लादी हुई स्थितियों में नहीं। क्योंकि यदि वह असत्य की माँगों के सामने झुक जाये तो अपने उद्देश्य को ही विफल कर देगी।

प्रकाश और सत्य की स्थितियाँ ही एकमात्र वे स्थितियाँ हैं जिनमें परम शक्ति नीचे उतरेगी; और केवल वह उच्चतम अतिमानसिक शक्ति ही, ऊपर से उतर कर और नीचे से खुल कर भौतिक प्रकृति पर सफलतापूर्वक क़ाबू पा सकती और इसकी कठिनाइयों को नष्ट कर सकती है, उसे जीत कर अपने हाथों में ले सकती है—होना चाहिये पूरा और सच्चा समर्पण, होना चाहिये भगवान् की शक्ति की ओर उद्घाटन—स्वयं को अनन्य रूप से खोलना। जो सत्य ऊपर से उतर रहा है उसे हर क्षण पूरी तरह अपनाना चाहिये, पार्थिव प्रकृति पर मन, प्राण और शरीर की जिन शक्तियों और रूपों का शासन चल रहा है उनके मिथ्यापन को हर क्षण पूरी तरह अस्वीकार करना चाहिये।

यह समर्पण सम्पूर्ण और सत्ता के अंग-प्रत्यंग को लिये हुए होना चाहिये। इतना ही काफ़ी नहीं है कि हृत्पुरुष स्वीकार कर ले, मन का उच्चतर भाग मान ले, अन्तःप्राण अधीन हो जाये और शरीर के अन्दर की चेतना उसका प्रभाव अनुभव करे, बल्कि सत्ता के किसी भी हिस्से में, यहाँ तक कि बाहरी-से-बाहरी अंग में भी कोई ऐसी चीज़ नहीं होनी चाहिये जिसे किसी प्रकार का कोई संकोच हो, जो किसी संशय, अस्पष्टता और छल-कपट के पीछे छिपी हो, जो विद्रोह करती हो या इन्कार करती हो।

यदि सत्ता का एक हिस्सा तो समर्पण करे लेकिन दूसरा अपने-आपको रोक ले, अपने ही रास्ते चले या अपनी ही शर्तें रखे, तो समझ लो कि जब-जब ऐसा होता है तब-तब तुम अपने-आप ही भगवत्कृपा को अपने पास से दूर हटा देते हो।

यदि तुम अपनी भक्ति और अपने समर्पण के पीछे अपनी इच्छाओं को, अहंकार की माँगों को और प्राण के हठों को छिपाये रहो, यदि तुम इन चीज़ों को सच्ची अभीप्सा के स्थान पर ला बिठाओ या इन्हें सच्ची अभीप्सा के साथ मिला दो और इन्हें भगवती शक्ति पर लादना चाहो तो रूपान्तर करने के लिए तुम्हारा भगवत्कृपा को पुकारना बेकार है।

यदि एक ओर से या एक भाग में तुम अपने-आपको सत्य के लिए खोलो और दूसरी ओर के दरवाज़े लगातार विरोधी शक्तियों के लिए खोलते जाओ तो यह आशा व्यर्थ है कि भगवत्कृपा तुम्हारा साथ देगी। तुम्हें मन्दिर को साफ़ रखना होगा, यदि तुम उसमें सजीव रूप से भगवान् की प्रतिष्ठा करना चाहते हो। यदि जब-जब शक्ति आये और अपने साथ सत्य को लाये तब-तब तुम उसकी ओर से पीठ फेर लो और फिर से, निकाले हुए असत्य को बुला लो, तो तुम भागवत कृपा को सहायता न देने का दोष नहीं दे सकते। इसमें दोष है तुम्हारे अपने संकल्प के मिथ्याचार का, तुम्हारे अपने समर्पण की कमियों का।

यदि तुम सत्य के लिए पुकार करो लेकिन साथ ही तुम्हारे अन्दर कोई चीज़ असत्य, अज्ञान और अ-भागवत का वरण करती रहे या इन्हें पूरी तरह छोड़ना न चाहे, तो तुम्हारे ऊपर आक्रमण का मार्ग सदा खुला रहेगा और भगवत्कृपा तुमसे पीछे हट जायेगी। पहले यह पता लगाओ कि तुम्हारे अन्दर क्या मिथ्या है, क्या अन्धकारमय है, फिर दृढ़ता से उसे

निकाल बाहर करो। तभी तुम रूपान्तर के लिए भगवान् की शक्ति को पुकारने के अधिकारी बनोगे।

यह कल्पना न करो कि भगवान् को निवेदित किये गये घर में सत्य और असत्य, प्रकाश और अन्धकार, समर्पण और स्वार्थ साथ-साथ रहने दिये जायेंगे। रूपान्तर सर्वांगीण होना चाहिये, अतः उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं का त्याग भी सर्वांगीण ही होना चाहिये।

यह मिथ्या धारणा त्याग दो कि तुम चाहे भगवान् की शर्तों का पालन न भी करो, भगवती शक्ति तुम्हारे लिए, तुम्हारी माँग के अनुसार सब कुछ कर देगी या करने के लिए बाधित है। अपने समर्पण को सच्चा और सम्पूर्ण बनाओ तभी तुम्हारे लिए बाक़ी सब कुछ किया जायेगा।

यह मिथ्या और आलस्य-भरी आशा भी त्याग दो कि भगवती शक्ति ही तुम्हारे लिए समर्पण भी कर देगी। भगवान् भगवती शक्ति के प्रति तुम्हारा आत्म-समर्पण माँगते हैं, उसे तुम पर लादते नहीं। तुम हर पल स्वतन्त्र हो; जब तक अटल रूपान्तर न हो जाये तब तक तुम भगवान् को अस्वीकार करने और उनका त्याग करने, अपने आत्म-दान को वापस ले लेने के लिए स्वतन्त्र हो—शर्त यह है कि तुम उसका आध्यात्मिक फल भोगने के लिए भी तैयार रहो। तुम्हारा समर्पण अपनी इच्छा से और मुक्त भाव से होना चाहिये। वह एक जीवित सत्ता का समर्पण होना चाहिये, निर्जीव कठपुतली या पराधीन यन्त्र का नहीं। तामसिक निष्क्रियता को ही सच्चा समर्पण मान लेने की भूल हमेशा हुआ करती है, किन्तु तामसिक निष्क्रियता से कोई सत्य और सशक्त वस्तु नहीं आ सकती। भौतिक प्रकृति अपनी तामसिक निष्क्रियता के कारण ही अन्धकारपूर्ण या अदिव्य प्रभाव का शिकार बना करती है। भगवती शक्ति की क्रिया के प्रति प्रसन्न, सशक्त और सहायक अधीनता होनी चाहिये और सत्य के ज्ञान से दीप्त अनुयायी की, अन्धकार और असत्य से लड़ने वाले आन्तर योद्धा की और भगवान् के सच्चे सेवक की आज्ञाकारिता होनी चाहिये।

यही है सच्चा भाव। और जो इसे ग्रहण कर सकते और बनाये रख सकते हैं, केवल उन्हीं की श्रद्धा निराशाओं और कठिनाइयों के बीच अटल बनी रहेगी और वे ही अग्निपरीक्षाओं में से होकर परम विजय और महान् रूपान्तर की प्राप्ति करेंगे।

(२)

जगत् में जो कुछ होता है उस सबमें, सब कार्यों के पीछे भगवान् अपनी शक्ति के द्वारा रहते हैं, किन्तु वे अपनी योगमाया से ढके रहते हैं और इस अपरा प्रकृति में जीव के अहंकार के द्वारा कार्य करते हैं।

योग में भी भगवान् ही साधक हैं और साधना भी; यह उन्हीं की शक्ति है जो अपने प्रकाश, बल, ज्ञान, चेतना और आनन्द से आधार पर क्रिया करती है और जब आधार इस शक्ति की ओर खुल जाता है तो उसमें अपनी इन दिव्य शक्तियों को भरती है, जिनसे साधना सम्भव होती है, परन्तु जब तक निम्न प्रकृति सक्रिय है तब तक साधक के व्यक्तिगत प्रयत्न की आवश्यकता बनी रहती है।

जिस व्यक्तिगत प्रयत्न की आवश्यकता है वह है अभीप्सा, त्याग और समर्पण की तिहरी साधना :

अभीप्सा : जो सतर्क, निरन्तर और स्थिर हो, जो मन का संकल्प, हृदय की चाह, प्राण की स्वीकृति हो; शरीर की चेतना और प्रकृति को उसी शक्ति की ओर खोलने और सुनम्य बनाने का संकल्प हो।

त्याग : निम्नतर प्रकृति की सभी वृत्तियों का, मन के विचारों का, मतों, पसन्दों, आदतों और कल्पनाओं का त्याग, ताकि सच्चे ज्ञान को मन की निस्तब्धता में रिक्त स्थान मिले—प्राण-प्रकृति की सारी इच्छाओं, माँगों, क्षुधाओं, अनुभवों, आवेगों, स्वार्थपरताओं, अभिमान, अहम्मन्यता, काम, लोभ, ईर्ष्या, असूया, सत्य का विरोध, इन सबका त्याग ताकि एक शान्त, विशाल, सबल तथा समर्पित प्राणसत्ता में वास्तविक शक्ति और आनन्द की वर्षा हो—शारीरिक प्रकृति की मूढ़ता, संशय, अविश्वास, अन्धता, दुराग्रह, क्षुद्रता, आलस्यपूर्णता, परिवर्तन की अनिच्छा, तामसिकता—इन सबका त्याग, ताकि ज्योति, शक्ति और आनन्द की सच्ची स्थिरता अधिकाधिक दिव्य होती हुई शरीर में प्रतिष्ठित हों।

समर्पण : भगवान् और उनकी शक्ति के प्रति आत्मसमर्पण, हम जो कुछ हैं, और हमारे पास जो कुछ है उस सबका समर्पण, हमारी चेतना के प्रत्येक स्तर का और हमारी प्रत्येक क्रिया का समर्पण।

जब समर्पण और आत्म-निवेदन बढ़ते हैं तो उसी अनुपात में साधक

को यह अनुभव होता जाता है कि भगवती शक्ति ही साधना कर रही हैं, अपने-आपको उसके अन्दर अधिकाधिक उँडेल रही हैं, और उसके अन्दर भागवत प्रकृति की स्वतन्त्रता और पूर्णता स्थापित कर रही हैं। यह सचेतन प्रक्रिया उसके निजी प्रयास का जितना अधिक स्थान लेती जायेगी उतनी ही अधिक तेज़ और सच्ची उसकी प्रगति होगी। परन्तु यह पूरी तरह व्यक्तिगत प्रयास की आवश्यकता का स्थान तब तक नहीं ले सकती जब तक समर्पण और आत्म-निवेदन नख से शिख तक विशुद्ध और पूर्ण न हो जायें।

ध्यान रहे कि तामसिक समर्पण, जो समर्पण की शर्तें पूरी करने से इन्कार करता है और भगवान् को इसीलिए पुकारता है कि वे उसे कष्ट और प्रयास से बचा दें, एक धोखा है और वह मुक्ति और पूर्णता तक नहीं ले जा सकता।

(३)

जीवन में सब प्रकार के भय, संकट और विनाश से बच कर चलने के लिए दो ही चीज़ों की आवश्यकता है, दो चीज़ें जो सदा साथ रहती हैं —एक तो भगवती माँ की कृपा, और दूसरी, तुम्हारी ओर से ऐसी आन्तरिक स्थिति जो श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण से पूर्ण हो। तुम्हारी श्रद्धा विशुद्ध, निश्छल और पूर्ण हो। मन और प्राण की अहंकारमयी श्रद्धा— जो महत्त्वाकांक्षा, अभिमान, दम्भ व मानसिक अहंकार से और प्राण की स्वेच्छाचारिता, वैयक्तिक माँग तथा निम्न प्रकृति की तुच्छ सन्तुष्टियों की कामना से कलुषित होती है—एक निम्न और धुँए से ढकी अग्निशिखा है जिसकी लौ ऊपर स्वर्ग की ओर नहीं उठ सकती। यही मानो कि तुम्हारा जीवन तुम्हें भगवान् के कार्य के लिए और भगवान् की अभिव्यक्ति में सहायता देने के लिए ही मिला है। केवल भागवत चेतना की विशुद्धता, शक्ति, ज्योति, विशालता, स्थिरता और आनन्द और उस चेतना का यह आग्रह कि उसके द्वारा तुम्हारे मन, प्राण और शरीर का रूपान्तर हो—इसके सिवा और कुछ न चाहो। कुछ मत माँगो, माँगो केवल दिव्य आध्यात्मिक और अतिमानसिक सत्य, उस सत्य की सिद्धि पृथ्वी पर, तुम्हारे अपने अन्दर और उन सबके अन्दर जो इसके लिए बुलाये और चुने गये हैं। उन परिस्थितियों को माँगो जो इस सत्य की सृष्टि के लिए और इसकी विजय

के लिए आवश्यक हैं।

तुम्हारी निष्ठा और समर्पण सच्चे और सम्पूर्ण हों। जब तुम अपने-आपको देते हो तो पूरी तरह दो, बिना किसी माँग के, बिना किसी शर्त के और बिना किसी संकोच के दो, ताकि तुम्हारे अन्दर जो कुछ है वह सब भगवती माँ का हो जाये, और कुछ भी अहं के लिए या अन्य किसी शक्ति को देने के लिए बच न रहे।

तुम्हारी श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण जितने अधिक पूर्ण होंगे, भगवती माँ की कृपा और रक्षा भी तुम्हारे साथ उतनी ही अधिक रहेंगी। और जब भगवती माँ की कृपा और अभय-हस्त तुम पर हैं तो फिर कौन-सी चीज़ है जो तुम्हें स्पर्श कर सके या जिसका तुम्हें भय हो? कृपा का छोटा-सा कण भी तुम्हें सब कठिनाइयों, बाधाओं और संकटों के पार ले जायेगा; क्योंकि यह मार्ग माँ का है, इसलिए किसी भी संकट की परवाह किये बिना, किसी भी शत्रुता से प्रभावित हुए बिना—चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, चाहे वह इस जगत् की हो या अन्य अदृश्य जगत् की—इसकी पूर्ण उपस्थिति से घिर कर तुम अपने मार्ग पर सुरक्षित होकर आगे बढ़ सकते हो। इसका कृपा-स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। क्योंकि भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है। आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट, अवश्यम्भावी और अनिवार्य है।

(४)

धन एक वैश्व शक्ति का प्रत्यक्ष चिह्न है। यह शक्ति धरती पर प्रकट होकर प्राण और जड़-स्तरों पर कार्य करती है और बाहरी जीवन की पूर्णता के लिए इसका होना अनिवार्य है। अपने मूल और वास्तविक कर्म की दृष्टि से यह भगवान् की शक्ति है। परन्तु भगवान् की अन्य शक्तियों की भाँति यह शक्ति भी यहाँ औरों को सौंप दी गयी है और निम्नतर प्रकृति के अज्ञान में इसका अपहरण अहंकार के उपयोग के लिए हो सकता है या आसुरी प्रभावों की पकड़ में आकर उनके उद्देश्यों के लिए यह विकृत की जा सकती है। वास्तव में यह उन तीन शक्तियों—सत्ता, धन, काम-वासना—में से एक है जिनके लिए मानव-अहंकार और असुरों को सबसे अधिक आकर्षण होता

है और जिन लोगों के पास ये हैं वे अधिकतर इनके अनधिकारी हैं और इनका दुरुपयोग ही करते हैं। धन को पाने वाले या रखने वाले अधिकतर उसके स्वामी नहीं, दास ही होते हैं। बहुत ही कम लोग उस विकृतिकारक प्रभाव से पूरी तरह बच पाते हैं जिसकी छाप लम्बे समय से असुरों के हाथों में रहने और उनके द्वारा इसका दुरुपयोग होने से इस पर लग गयी है। इसी कारण अधिकतर आध्यात्मिक साधन-मार्ग पूर्ण आत्म-संयम और अनासक्ति पर तथा धन के सारे बन्धनों और उसे पाने की सारी व्यक्तिगत और अहंकारयुक्त अभिलाषा के त्याग पर बल देते हैं। यहाँ तक कि कुछ तो धन और वैभव पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं और जीवन की दरिद्रता तथा रिक्तता को ही एकमात्र आध्यात्मिक अवस्था घोषित कर देते हैं। किन्तु यह एक भूल है जो उस शक्ति को विरोधी सत्ताओं के हाथों में छोड़ देती है। यह भगवान् की है और इसे भगवान् के लिए पुनः जीतना और भागवत जीवन के लिए भागवत भाव से इसका उपयोग करना है—यही साधक के लिए अतिमानसिक मार्ग है।

तुम्हें धनशक्ति और उससे प्राप्त होने वाले साधनों और पदार्थों की ओर से वैरागियों की तरह न तो मुड़ना चाहिये, न ही इनके प्रति राजसिक आसक्ति रखनी चाहिये और न ही इनके सुखों को भोगने की वृत्ति का दास होना चाहिये। धन को बस एक शक्ति मानो जिसे माँ के लिए फिर जीतना है और माँ की सेवा में अर्पण करना है।

सारा धन भगवान् का है। वह जिन लोगों के हाथ में है वे उसके मालिक नहीं, न्यासी या 'ट्रस्टी' हैं। आज वह उन लोगों के पास है, कल कहीं और हो सकता है। सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि जब तक धन उनके पास है, वे अपनी धरोहर को किस प्रकार रखते हैं, उसका किस भाव से, किस चेतना से, किस उद्देश्य के लिए उपयोग करते हैं।

धन का अपने लिए उपयोग करते हुए, जो कुछ तुम्हारे पास है, तुम्हें मिलता है या तुम लाते हो उसे माँ का मानो। कोई माँग न करो, वरन् जो कुछ वे दें उसे स्वीकार करो और वह जिस काम के लिए दिया गया हो उसी काम में लगाओ। पूरी तरह निस्स्वार्थ, पूरे ईमानदार और सच्चे बनो, ब्योरे की एक-एक बात का ध्यान रखने वाले एक अच्छे 'ट्रस्टी' बनो। सदा ध्यान रखो कि तुम जिस धन का उपयोग कर रहे हो वह माँ का है, तुम्हारा

नहीं। दूसरी ओर, माँ के लिए जो कुछ तुम्हें मिले उसे धार्मिक भाव से उनके सामने रखो, कुछ भी अपने या और किसी के काम में न लगाओ।

किसी को उसके धन के कारण ऊँचा न समझो, और न उसके आडम्बर, शक्ति या प्रभाव का अपने ऊपर असर होने दो। माँ के लिए जब किसी से माँगो तो यह अनुभव करो कि तुम्हारे द्वारा माँ ही उस वस्तु का एक छोटा-सा अंशमात्र माँग रही हैं जो उनकी है, और तुम जिस व्यक्ति से माँगते हो उसकी जाँच उसके उत्तर से होगी।

यदि तुम धन के दोष से मुक्त हो—लेकिन बिना वैरागियों की-सी विरक्ति के—तो तुम्हें भगवान् के काम के लिए धन पर अधिकार करने की अधिक क्षमता प्राप्त होगी। मन की समता, माँग का अभाव और जो कुछ तुम्हारे पास है और तुम्हें मिलता है, जो कुछ तुम्हारी उपार्जन-शक्ति है उस सबका भगवती शक्ति के चरणों में और उसी के कार्य में पूरा अर्पण—ये इस मुक्ति के लक्षण हैं। धन के सम्बन्ध में या उसके उपयोग में किसी प्रकार की मन की चञ्चलता, अधिकार-भावना या अनिच्छा का होना किसी-न-किसी अपूर्णता या बन्धन का निश्चित चिह्न है।

इस विषय में उत्तम साधक वह है जिसे यदि दरिद्रता में रहना पड़े तो दरिद्र बन कर रह सके, और अभाव की कोई भावना उसे न खटके, न उसके अन्दर भागवत चेतना की अबाध क्रीड़ा में कोई बाधा पड़े। और यदि उसे समृद्धि में रहना पड़े तो यह भी कर सके, और एक क्षण के लिए भी इच्छाओं-वासनाओं के गर्त में न गिरे, धन या अपने व्यवहार की चीज़ों पर आसक्ति न हो, विलास-प्रियता का वह दास न हो, या धन रहने पर जो आदतें पड़ जाया करती हैं उनके बन्धन में बेबस न हो जाये। भगवान् की इच्छा और भागवत आनन्द ही उसके लिए सब कुछ हैं।

अतिमानसिक सृष्टि में धन-शक्ति को पुनः भगवती शक्ति के हाथों में ला देना होगा और उसका उपयोग उस तरह करना होगा जैसे माँ भगवती अपनी सर्जनात्मक दृष्टि से एक नवीन दिव्य प्राणिक और भौतिक अस्तित्व के सत्य, सौन्दर्य और सुसामञ्जस्यमय संगठन और व्यवस्थापन के लिए निर्धारित करें। किन्तु पहली आवश्यकता है धन-शक्ति को जीत कर भगवती माँ के लिए वापस लाने की। और इस विजय-प्राप्ति के लिए सबसे अधिक सबल वे होंगे जो अपनी प्रकृति के इस भाग में सबल, उदार और

अहंकारमुक्त हैं तथा बिना किसी प्रत्याशा के निःशेष और निःसंकोच रूप से समर्पित हैं, और परमा शक्ति के लिए विशुद्ध और शक्तिशाली माध्यम हैं।

(५)

यदि तुम भगवान् के कामों के सच्चे कर्ता बनना चाहते हो तो तुम्हारा पहला लक्ष्य यही होना चाहिये कि तुम सारी कामनाओं से और अपने-आपको सर्वस्व मानने वाले अहंकार से सर्वथा मुक्त हो जाओ। तुम्हारा सारा जीवन भगवान् के प्रति निवेदन और यज्ञ-रूप होना चाहिये। कर्म में तुम्हारा एकमात्र लक्ष्य हो भगवती शक्ति की सेवा करना, उन्हें ग्रहण और चरितार्थ करना, और उनके कार्यों में उन्हें प्रकट करने वाला यन्त्र बनना। तुम्हें भागवत चेतना में तब तक विकसित होते जाना होगा जब तक तुम्हारी इच्छा और उनकी इच्छा में कोई भेद न रह जाये, तुम्हारे अन्दर उनकी प्रेरणा के अतिरिक्त कोई और प्रेरक हेतु न रहे, कोई कर्म ऐसा न हो जो तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे द्वारा होने वाला उन्हीं का सचेतन कर्म न हो।

जब तक तुम इस सम्पूर्ण सक्रिय एकत्व के योग्य नहीं हो जाते तब तक तुम्हें यही मानना चाहिये कि तुम्हारी देह और आत्मा माँ की सेवा के लिए ही बनी हैं, जो सब कुछ उन्हीं के लिए करती हैं। यदि तुम्हारे अन्दर यह बोध प्रबल हो कि तुम एक अलग कर्ता हो और तुम यह अनुभव करो कि तुम ही कर्म कर रहे हो तब भी कर्म माँ के लिए ही किया जाना चाहिये। अहंकारमय पसन्द के सभी कार्य, वैयक्तिक लाभ की सारी लालसा और स्वार्थभरी कामनाओं की सारी माँगों को प्रकृति में से मिटा देना होगा। फल की कोई माँग या पुरस्कार की कोई चाहना शेष न रहे। तुम्हारे लिए एकमात्र फल है भगवती माँ की प्रसन्नता और उनके कार्य की पूर्ति। तुम्हारा एकमात्र पुरस्कार होगा भागवत चेतना, शान्ति, बल और आनन्द में उत्तरोत्तर वृद्धि। सेवा का आनन्द और कर्मों के द्वारा आन्तरिक विकास का आनन्द ही निःस्वार्थ कार्यकर्ता के लिए यथेष्ट पुरस्कार है।

पर एक समय आयेगा जब तुम अधिकाधिक यह अनुभव करोगे कि तुम यन्त्र हो, कर्ता नहीं। क्योंकि पहले तो अपने भक्ति-बल द्वारा भगवती माँ के साथ तुम्हारा सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो जायेगा कि सारे समय उनका उपस्थित पथ-प्रदर्शन, उनका सीधा आदेश या प्रेरणा पाने के लिए तुम्हें

केवल एकाग्र होकर सब कुछ उनके हाथों में सौंपना होगा। इस बात का निश्चित संकेत पाने के लिए कि क्या करना है, कैसे करना है और उसका क्या फल होगा? बाद में तुम यह अनुभव करोगे कि भगवती शक्ति तुम्हें केवल प्रेरणा ही नहीं देतीं, मार्ग ही नहीं दिखातीं बल्कि तुम्हारे कर्मों को शुरू भी करती हैं और पूरा भी, तुम्हारी सारी गतियाँ उन्हीं से निकलती हैं, तुम्हारी सारी शक्तियाँ उन्हीं की हैं, तुम्हारे मन, प्राण और शरीर उन्हीं के कर्म के सचेतन और आनन्दमय यन्त्र हैं, उनकी लीला के साधन हैं, स्थूल जगत् में उनकी अभिव्यक्ति के साँचे हैं। इस एकता और निर्भरता से अधिक सुखद स्थिति और कोई नहीं हो सकती, क्योंकि यह पग तुम्हें अज्ञान के संघर्ष और भारमय जीवन के प्रदेश की सीमा के पार ले जाता है, तुम फिर अपनी अध्यात्मसत्ता के सत्य में, उसकी गभीर शान्ति में, उसके तीव्र आनन्द में जा पहुँचते हो।

जब यह रूपान्तर हो रहा हो तो यह पहले से कहीं अधिक आवश्यक हो जाता है कि तुम अपने-आपको अहंकार की समस्त विकृतियों के दोष से मुक्त रखो। किसी भी माँग या हठ को लुक-छिप कर अपने अन्दर घुसने और आत्मदान और बलिदान को कलंकित न करने दो। कर्म में या फल में कोई आसक्ति न हो, अपनी कोई शर्त न रखी जाये, तुम्हें जिस शक्ति के अधीन रहना है, उस पर अपने अधिकार का कोई दावा न हो। भगवती के यन्त्र होने का कोई अभिमान, कोई घमण्ड या दम्भ न हो। मन में या प्राण और देह के किसी भी भाग में कोई ऐसी चीज़ न रहनी चाहिये जो तुम्हारे द्वारा काम करती हुई महती शक्ति की महत्ता को अपने निजी काम में लगा कर विकृत कर दे या उनका अपनी व्यक्तिगत और पृथक् तृप्ति के लिए प्रयोग करे। तुम्हारी श्रद्धा, तुम्हारी सच्चाई और तुम्हारी अभीप्सा की विशुद्धता सम्पूर्ण हो और सत्ता के सब क्षेत्रों और स्तरों में व्याप जाये। तब, विघ्न उत्पन्न करने वाला प्रत्येक तत्त्व, विकृत करने वाला प्रत्येक प्रभाव उत्तरोत्तर तुम्हारी प्रकृति से झड़ जायेगा।

इस परिपूर्णता की अन्तिम अवस्था तब आयेगी जब भगवती माँ के साथ तुम्हारा पूरा तादात्म्य होगा, जब तुम यह अनुभव करोगे कि तुम कोई पृथक् भिन्न सत्ता, यन्त्र, सेवक या कर्ता नहीं हो, वरन् वास्तव में भगवती माँ की सन्तान, उनकी चेतना और शक्ति के सनातन अंश हो। सदा वे

तुम्हारे अन्दर रहेंगी और तुम उनके अन्दर; तुम्हें यह सतत, सहज और स्वाभाविक अनुभव होगा कि तुम्हारा सब सोचना, देखना, सुनना और कर्म करना, तुम्हारा श्वास-प्रश्वास और हिलना-डुलना भी उन्हीं से आता है, उन्हीं का है। तुम जानोगे, देखोगे और अनुभव करोगे कि उन्होंने ही तुम्हें अपने-आपमें से एक व्यक्ति और शक्ति के रूप में निर्मित किया है, अपने अन्दर से लीला के हेतु प्रकट किया है, और फिर भी तुम सदा उन्हीं के अन्दर सुरक्षित हो, उन्हीं की सत्ता के सत्, उन्हीं की चेतना की चेतना, उन्हीं की शक्ति की शक्ति और उन्हीं के आनन्द के आनन्द हो। जब यह स्थिति पूर्ण होगी और अतिमानसिक शक्तियाँ तुम्हें बिना रोक-टोक के परिचालित कर सकेंगी, तभी तुम उनके दिव्य कर्मों में पूर्णता प्राप्त करोगे; तब ज्ञान, संकल्प और कर्म निश्चित, सरल, ज्योतिर्मय, अबाध, निर्दोष, परमेश्वर से निःसृत एक प्रवाह, शाश्वत की एक दिव्य गतिधारा होंगे।

'माता' पुस्तक से, पृ. १-२५ —श्रीअरविन्द

भारत माँ को आवाहन

१५ अगस्त १९४७

हे हमारी माँ, हे भारत की आत्म-शक्ति, हे जननि, तूने कभी, अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहाँ तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे माँ, आज, इस महान् घड़ी में जब कि वे जाग उठे हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषःकाल में तेरे मुख-मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें वह पथ दिखा जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सम्मुख उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें वह पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्म मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्यजाति को दिखा सकें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८२

भवानी भारती

भवानी कौन हैं?

असीम शक्ति का नाम भवानी है। संसार के अनन्त प्रवाह में, अनादि का चक्र बड़ी तेज़ी से घूमता है। अनादि भगवान् से निकलने वाली असीम शक्ति ही चक्र को चलाती है। मनुष्य की दृष्टि में वह अलग-अलग आकारों और अनन्त रूपों में दिखायी देती है। हर एक आकार एक नया युग बनाता है। कभी वही शक्ति प्रेम का रूप लेती है कभी ज्ञान का, कभी वह त्याग होती है कभी दया। यही असीम शक्ति भवानी है, यही दुर्गा है, यही काली है और राधा प्यारी भी यही है। यही लक्ष्मी है, यही हमारी माँ और सारी सृष्टि को बनाने वाली है।

माँ सारे संसार में शक्ति के रूप में विकसित हो रही हैं

हम आँख उठा कर दुनिया में जिधर नज़र दौड़ायें उधर ही शक्ति के पुञ्ज उठते हुए दिखायी देते हैं। चारों ओर शक्ति की बाढ़ आयी हुई है। युद्ध की शक्ति, धन की शक्ति, विज्ञान की शक्ति, पहले से दस गुनी बलवान्, सौगुनी भयंकर, तेज़ और कार्यव्यस्त हैं और हज़ारों गुना अधिक साधन-सम्पन्न हैं। आज जितने अस्त्र-शस्त्र दिखायी देते हैं ऐसे इतिहास में कभी देखे या सुने तक नहीं गये।

हर जगह माँ काम कर रही हैं। उनके शक्तिशाली हाथों से गढ़े जाकर राक्षसों, असुरों और देवों के अनन्त रूप धरती के मैदान में कूद रहे हैं। हमने धीमी गति से पश्चिम के महान् साम्राज्यों को उठते हुए देखा है। हमने तेज़ गति से जापान में प्रचण्ड शक्ति को मूर्त रूप लेते हुए देखा है। कुछ म्लेच्छ शक्तियाँ हैं जो अपनी शक्ति के बादलों से घिरी हैं, तामसिक या राजसिक प्रभाव के कारण काले या लाल रंग में रँगी हैं। कुछ आर्य शक्तियाँ हैं जो त्याग और आत्म-बलिदान की पवित्र ज्वाला में से निकली हैं। रंग-रूप चाहे जैसा हो सबमें माँ अपने रूप में आकार गढ़ती और सृष्टि करती जा रही हैं। वे पुरानों में अपनी आत्मा उँडेल रही हैं। नयों में जीवन का चक्र चला रही हैं।

हम भारतीय शक्ति के अभाव के कारण ही असफल रहते हैं

लेकिन भारत में साँस धीमी चलती है, प्रेरणा आने में देर लगती है। भारत—प्राचीन भारत-माँ नया जन्म लेने की कोशिश कर रही है, लेकिन यह कोशिश बेकार है। आख़िर उसे रोग क्या है? वह कितनी विशाल है! इतनी ही शक्तिशाली भी तो हो सकती है। कहीं कोई बड़ी कमी है, कोई ख़ास दोष है। उसे पकड़ पाना भी कठिन नहीं है। हमारे अन्दर सब कुछ है, सिर्फ़ शक्ति की, ऊर्जा की कमी है। हमने शक्ति को छोड़ दिया है और इसलिए शक्ति ने भी हमें छोड़ दिया है। हमारे हृदय में, हमारे मस्तिष्क में, हमारी भुजाओं में माँ नहीं हैं।

नये जन्म के लिए हमारे अन्दर इच्छा है और बहुत है। कितने प्रयास किये जा चुके हैं। कितने धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन शुरू किये जा चुके हैं। लेकिन सबका एक ही परिणाम रहा या होने को है। थोड़ी देर के लिए वे चमक उठते हैं, फिर प्रेरणा मन्द पड़ जाती है, आग बुझ जाती है और अगर वे बचे भी रहें तो ख़ाली सीपियों या छिलकों के रूप में रहते हैं, जिनमें से ब्रह्म निकल गया है या वे तमस् के वश में हैं। हमारे प्रारम्भ महान् होते हैं, लेकिन न तो उनका परिणाम आता है न फल।

अब हमने एक नयी दिशा पकड़ी है। हमने उद्योग शुरू किये हैं ताकि ग़रीब देश का उत्थान और नया जन्म हो सके। हमने अनुभव से कुछ नहीं सीखा है। हम यह नहीं देख पाते कि अगर हमने शक्ति प्राप्त न की, जो कि सबसे पहली आवश्यकता है, तो यह धारा भी उसी दिशा में जायेगी।

शक्ति के बिना हमारा ज्ञान मरी हुई चीज़ है

क्या ज्ञान की कमी है? हम भारतीय एक ऐसे देश में पैदा हुए हैं जहाँ मनुष्यजाति के आरम्भ से ही ज्ञान इकट्ठा होता आ रहा है। हज़ारों बरसों से प्राप्त किया लाभ हमें यूँ ही मिल जाता है। आज भी हमारे अन्दर बड़े-बड़े ज्ञानी पैदा होते हैं जो हमारे ज्ञान के पुराने भण्डार को बढ़ाते रहते हैं। हमारी योग्यता कम नहीं हुई है, हमारी बुद्धि की धार भोथरी नहीं हुई है। उसकी ग्रहणशक्ति में और उसके लचीलेपन में कोई फ़र्क नहीं आया है। लेकिन हमारा ज्ञान मृत ज्ञान है, एक भार है जिसके नीचे हम झुके जा रहे हैं, एक ज़हर है जो हमें खाये जा रहा है। होना तो यह चाहिये था कि

यह ज्ञान हमारे पैरों को सहारा देने वाली लकड़ी होता, हमारे हाथों का हथियार होता, लेकिन जब बड़ी चीज़ों का उपयोग नहीं होता या दुरुपयोग होता है तो वे उलट कर ग़लत उपयोग करने वाले पर ही टूट पड़ती हैं और उसे नष्ट कर देती हैं।

तमस् से लदा हुआ हमारा ज्ञान नपुंसकता और व्यर्थता के शाप का शिकार है। आजकल हम यह मान लेते हैं कि हम विज्ञान सीख लें तो सब कुछ ठीक हो जायेगा। हम पहले अपने-आपसे पूछ सकते हैं कि हमारे पास जितना ज्ञान है उसका हमने क्या उपयोग किया है? हममें से जिन लोगों ने सायंस सीखी है उनमें से कितनों ने देश का कितना भला किया है? हम कुछ मौलिक काम करने-योग्य नहीं हैं, नक़ल करना ही हमारा गुण है। पहले हम अंग्रेज़ों की नक़ल करते थे, अब जापान की नक़ल करेंगे। जब उसमें सफल न हो पाये तो भला इसमें क्या सफल होंगे! यूरोपीय सायंस से प्राप्त ज्ञान दानव के हाथों का हथियार है, भीमसेन की गदा है। अगर कोई कमज़ोर आदमी उसे उठाने की कोशिश करे तो तो वह अपने-आप चकनाचूर हो जायेगा।

भारत का नया जन्म हो सकता है

हममें से बहुत-से तमस् में डूबे हुए हैं, अन्धकारमय जड़ता के राक्षस के शिकार हैं और कहते हैं, "यह सब असम्भव है, भारत ख़त्म हो चुका है, उसमें न रक्त है न प्राण। अब उसका उठना असम्भव है। वह बहुत कमज़ोर है और अब उसका विनाश निश्चित है।" लेकिन यह मूर्खताभरी बेकार बातें हैं। किसी भी मनुष्य या जाति के कमज़ोर होने की ज़रूरत नहीं है, यह अपने चुनाव पर निर्भर है। किसी भी मनुष्य या जाति के नष्ट होने की ज़रूरत नहीं है, जब तक कि वह अपने-आप जान-बूझकर नष्ट होना न चाहे।

राष्ट्र क्या है? अपने करोड़ों व्यक्तियों की शक्ति

राष्ट्र क्या है? हमारी मातृभूमि क्या है? यह कोई भूमि का टुकड़ा, भाषा का अलंकार या मन की कहानी नहीं है। जैसे भवानी महिषमर्दिनी का प्रादुर्भाव करोड़ों देवताओं की शक्ति के मिलने से हुआ था उसी तरह भारत

माता की एक शक्ति है जो करोड़ों देशवासियों की शक्ति से मिल कर बनी है। जिस शक्ति को हम भारतवर्ष या भवानी भारती कहते हैं वह भारत के तीस करोड़ की (उन दिनों आबादी तीस करोड़ ही थी—सं.) जीवित-जाग्रत् शक्ति है। लेकिन वह निष्क्रिय पड़ी है, तामसिक चक्र में बन्दी है, अपनी सन्तान की जड़ता में ही आनन्द लेने वाली वृत्ति और अज्ञान में फँसी है। इस तमस् से बचने का एक ही उपाय है—अपने अन्दर ब्रह्म को जगाना...

भारत का नया जन्म ज़रूरी है,
संसार के भविष्य के लिए उसकी ज़रूरत है

भारत नष्ट नहीं हो सकता। हमारी जाति समाप्त नहीं हो सकती क्योंकि मानवजाति के भविष्य के लिए वह बहुत आवश्यक है, उसे सबसे ऊँची और सबसे शानदार भूमिका के लिए चुना गया है। भारतवर्ष से ही सारे संसार का धर्म निकलेगा, वह शाश्वत सनातन धर्म जो सब धर्मों में, विज्ञान और दर्शन में समन्वय करेगा और मानवजाति को एक अन्तरात्मा बनायेगा। इसी तरह नैतिक क्षेत्र में उसे मानवजाति की म्लेच्छता, गँवारूपन, अशिष्टता दूर करके सारे संसार को आर्य बनाना है, लेकिन इससे पहले उसे अपने-आपको फिर से आर्य बनाना होगा।...

शक्ति प्राप्त करने के लिए हमें शक्ति-माता की पूजा करनी होगी

आज हमारी जाति को आवश्यकता है शक्ति, शक्ति और अधिक शक्ति की। लेकिन अगर हम शक्ति चाहें तो उसे शक्ति-पूजा के बिना कैसे पा सकते हैं? उन्हें अपने लिए हमारी पूजा की कोई ज़रूरत नहीं है। वे पूजा की माँग करती हैं ताकि उसके द्वारा वे हमारी मदद कर सकें और अपने-आपको हमें दे सकें। यह कोई कपोल-कल्पना या वहम नहीं है। यह संसार का साधारण नियम है, देवता बिना माँगे अपने-आपको नहीं दे सकते। शाश्वत भी मनुष्यों के पास अनजाने में नहीं आता। हर भक्त अपने अनुभव से जानता है कि परमात्मा अपने अनिर्वचनीय सौन्दर्य और आनन्द के साथ तभी प्रकट होते हैं जब हम उनका आवाहन करें। जो बात परमात्मा के बारे में ठीक है वही उनकी शक्ति के बारे में भी ठीक है।

'भवानी भारती', पुस्तक से, पृ. १-५ —श्रीअरविन्द

भारत के बारे में

उद्‌गम को प्राप्त किया जाये

वस्तुतः, क्या भारतवर्ष में ही उस परम जननी की अत्यधिक प्रगाढ़ भक्ति और पूर्ण उपासना नहीं की जाती जो विश्व को बनाने वाली और शत्रुओं पर विजय पाने वाली है, जो समस्त देवताओं और समस्त जगतों की माता है, सकल-वरदायिनी है?

और क्या भारत में ही हम स्त्री-तत्त्व, 'प्रकृति' अर्थात् 'माया' की अत्यन्त आमूल रूप में निन्दा और उसके प्रति अत्यधिक घृणा प्रदर्शित होते नहीं देखते, क्योंकि वह एक विकारजनक भ्रम है तथा समस्त दुःख और पतन का कारण है, अर्थात्, ऐसी 'प्रकृति' है जो विमोहित और कलुषित करती है तथा व्यक्ति को भगवान् से दूर ले जाती है?

भारतवर्ष का सारा जीवन ही इस विरोध से सराबोर है; वह अपने मन और हृदय, दोनों में इससे पीड़ित है। यहाँ, सर्वत्र, मन्दिरों में देवियों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, माँ दुर्गा से ही भारतवर्ष की सन्तानें मुक्ति और मोक्ष की आशा करती हैं। और फिर भी एक भारतवासी ने ही यह कहा है कि अवतार कभी स्त्री के शरीर में जन्म नहीं लेगा, क्योंकि तब कोई विचारवान् हिन्दू उसे न पहचान पायेगा! पर यह प्रसन्नता की बात है कि भगवान् इस संकीर्ण साम्प्रदायिक भावना से प्रभावित नहीं होते और न ही इन तुच्छ विचारों द्वारा प्रेरित होते हैं। जब पार्थिव शरीर में अवतरित होने की उनकी इच्छा होती है तो वे इस बात की परवाह कम ही करते हैं कि लोग उन्हें पहचानेंगे या नहीं। इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रतीत होता है कि अपने सब अवतारों में उन्होंने विद्वानों की अपेक्षा बच्चों और सरल हृदयों को अधिक पसन्द किया है।

जो भी हो, जब तक एक ऐसी नयी जाति को, जिसे प्रजनन की आवश्यकता के अधीन होने की ज़रूरत न हो और जो सत्ता के दो पूरक लिंगों में विभाजित होने के लिए बाध्य न हो, उत्पन्न करने के लिए प्रकृति को प्रेरित करने वाला नया विचार एवं नयी चेतना प्रकट नहीं हो जाते, तब तक वर्तमान मानवजाति की उन्नति के लिए अधिक-से-अधिक यही किया जा सकता है कि पुरुष और स्त्री दोनों के साथ पूर्ण समानता का

व्यवहार किया जाये, दोनों को एक ही शिक्षा तथा प्रशिक्षा दी जाये तथा दिव्य सत्ता के साथ, जो कि समस्त लिंग-भेदों से ऊपर है, सतत सम्पर्क स्थापित करके समस्त सम्भावनाओं और समस्त समस्वरताओं के उद्‌गम को प्राप्त किया जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ११४-१५

भारत की आत्मा

आपने अपने एक सन्देश में कहा है :

"भारत की सबसे पहली समस्या है, अपनी आत्मा को फिर से पाना और अभिव्यक्त करना।"

भारत की आत्मा को कैसे पाया जाये?

अपने चैत्य पुरुष के बारे में सचेतन होओ। ऐसा करो कि तुम्हारा चैत्य पुरुष भारत की 'आत्मा' में तीव्र रुचि ले और उसके लिए सेवा-वृत्ति से अभीप्सा करे; और अगर तुम सच्चे हो तो सफल हो जाओगे।

*

भारत वह देश है जहाँ चैत्य के विधान का शासन **हो सकता है और होना चाहिये** और अब **यहाँ** उसका समय आ गया है। इसके अतिरिक्त, इस देश के लिए, जिसकी चेतना दुर्भाग्यवश विदेशी राज्य के प्रभाव और आधिपत्य के कारण विकृत हो गयी है, यही एक सम्भव निस्तार है। हर चीज़ के बावजूद, उसके पास एक अनोखी आध्यात्मिक परम्परा है।

आशीर्वाद।

('आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी से प्रसारित सन्देश)

हम प्रकाश और सत्य के सन्देशवाहक होना चाहते हैं। सामञ्जस्यपूर्ण भविष्य जगत् के सामने उद्‌घोषित होने के लिए तैयार खड़ा है।

समय आ गया है जब भय द्वारा शासन करने की आदत के स्थान पर प्रेम का शासन आये।

(माताजी के जन्मदिन २१ फ़रवरी १९७१ को 'आकाशवाणी', पॉण्डिचेरी से प्रसारित सन्देश)

सच्ची स्वाधीनता ऊपर उठती हुई गति है जो निम्न वृत्तियों के आगे नहीं झुकती।

सच्ची स्वाधीनता एक भागवत अभिव्यक्ति है।

हम भारत के लिए सच्ची स्वाधीनता चाहते हैं ताकि वह संसार के सामने इस बात का उचित उदाहरण बन सके कि मानवजाति को क्या होना चाहिये?

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०३-०५

अति प्राचीन काल से (कुछ विद्वान् कहते हैं ईसा से ८००० वर्ष पहले से) भारत आध्यात्मिक ज्ञान और साधना का देश, 'परम सद्वस्तु' की खोज और उसके साथ ऐक्य का देश रहा है। यह वह देश है जिसने एकाग्रता का सर्वोत्तम और सबसे अधिक अभ्यास किया है। इस देश में जो पद्धतियाँ सिखायी जाती हैं, जिन्हें संस्कृत में योग कहते हैं, वे अनन्त हैं। कुछ केवल भौतिक हैं, कुछ शुद्ध रूप से बौद्धिक हैं, कुछ धार्मिक और भक्तिपरक हैं; अन्ततः कुछ हैं जो अधिक सर्वांगीण परिणाम प्राप्त करने लिए इन विविध पद्धतियों को मिला देती हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०७

भारत की आत्मा एक और अविभाज्य है। भारत संसार में अपने 'मिशन' के बारे में सचेतन है। वह अभिव्यक्ति के बाहरी साधनों की प्रतीक्षा कर रहा है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८२

अपने तुच्छ, स्वार्थपूर्ण व्यक्तित्व से बाहर निकलो और अपनी भारतमाता के योग्य शिशु बनो। अपने कर्तव्यों को सच्चाई और ईमानदारी के साथ पूरा करो और 'भागवत कृपा' में अडिग विश्वास रखते हुए हमेशा प्रफुल्ल और विश्वासपूर्ण बने रहो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८९

दो विकल्प

श्रीअरविन्द के जन्म तक, धर्म और अध्यात्म के पन्थ हमेशा भूतकालीन व्यक्तियों पर आधारित थे और वे "जीवन का लक्ष्य" बताते थे धरती से जीवन के विलय को। तो, तुम्हारे सामने दो विकल्प होते थे : या तो

—इस जगत् **में** ऐसा जीवन जो तुच्छ विलास और पीड़ा, सुख-दुःख का चक्कर होगा और ठीक तरह व्यवहार न करने से नरक का भय रहेगा, या

—यहाँ से किसी और लोक **में** बच निकलना, स्वर्ग, निर्वाण, मोक्ष...।

इन दोनों में से चुनने-लायक कुछ भी नहीं है, दोनों समान रूप से ख़राब हैं।

श्रीअरविन्द ने हमें बतलाया है कि यही वह आधारभूत भूल थी जो भारत की दुर्बलता और उसके पतन के लिए ज़िम्मेदार है। बौद्ध धर्म, जैन धर्म, मायावाद देश की समस्त जीवन-शक्ति को सुखा देने के लिए काफ़ी थे।

यह सच है कि आज धरती पर भारत ही एकमात्र देश है जिसे इस बात का भान है कि 'जड़-द्रव्य' के सिवा और भी किसी चीज़ की सत्ता है। अन्य देश—यूरोप, अमरीका आदि—इसे बिलकुल भूल चुके हैं। इसलिए सन्देश अभी तक उसी के पास है, उसे सुरक्षित रखना और दुनिया तक पहुँचाना है। लेकिन अभी तो वह अव्यवस्था में बिखर और छटपटा रहा है।

श्रीअरविन्द ने बतलाया है कि सत्य सांसारिक जीवन से भागने में नहीं, उसके **अन्दर** रह कर, **उसे रूपान्तरित करने और उसे दिव्य बनाने में** है ताकि भगवान् **यहाँ, भौतिक जगत्** में अभिव्यक्त हो सकें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २३०

भारत आधुनिक मानवजाति की सभी कठिनाइयों का प्रतीकात्मक प्रतिनिधि बन गया है।

भारत ही उसके पुनरुत्थान का, एक उच्चतर और सत्यतर जीवन में पुनरुत्थान का देश होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०१

संस्कृत को भारत की राष्ट्रभाषा होना चाहिये।

आशीर्वाद।

भारत के लिए एक मन्त्र

(निम्नलिखित सन्देश आश्रम में इस भूमिका के साथ बाँटा गया था : "देश के वर्तमान संकट के समय सब लोगों के लिए श्रीमाँ का दिया हुआ मन्त्र।")

परम प्रभो, शाश्वत सत्य
वर दे कि हम तेरी ही आज्ञा का पालन करें
और 'सत्य' के अनुसार जियें।

भारत क्या है?

भारत इस भूमि की मिट्टी, नदियाँ और पहाड़ नहीं है, न ही इस देश के वासियों का सामूहिक नाम भारत है। भारत एक जीवन्त सत्ता है, इतनी ही जीवन्त जितने कि, कह सकते हैं, शिव। भारत एक देवी है जैसे शिव एक देवता हैं। अगर वे चाहें तो मानव रूप में भी प्रकट हो सकती हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०५-०६

हर एक देश 'परम देव' के एक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है।

पार्थिव अभिव्यक्ति में सभी देशों को अपनी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का समान अधिकार है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से किसी देश का महत्त्व उसके आकार, उसकी शक्ति या अन्य देशों पर उसके प्रभुत्व पर नहीं बल्कि 'सत्य' को स्वीकार करने और उसे अभिव्यक्त कर सकने में उसकी क्षमता के परिमाण पर निर्भर होता है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४१७-४१८

जब तुम्हें सुन्दरता से कतराना सिखाया जाता हो तो इसका अर्थ है कि इसके पीछे असुर का एक बहुत बड़ा अस्त्र क्रियाशील है। इसी ने भारत का विनाश किया है। भगवान् चैत्य में प्रेम, मन में ज्ञान, प्राण में शक्ति तथा भौतिक में सौन्दर्य के रूप में प्रकट होते हैं। अगर तुम सौन्दर्य का बहिष्कार करो तो तुम भगवान् को भौतिक स्तर पर प्रकट होने से रोकते हो और उस भाग को असुर के हाथ में सौंप देते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०७

श्रीमाँ के साथ वार्तालाप

भारत की स्थिति

हम देखते हैं कि इस समय पूरा संसार एक प्रकार के असन्तुलन और विशृंखलता की स्थिति में है। क्या इसका यह अर्थ है कि वह अपने-आपको एक नयी शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए, 'सत्य' के अवतरण के लिए तैयार कर रहा है? या फिर यह अवतरण के विरुद्ध आसुरिक शक्तियों के विद्रोह का परिणाम है? इस सबमें भारत का क्या स्थान है?

दोनों बातें एक साथ हैं। यह तैयारी का एक विशृंखल तरीक़ा है। भारत को आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक होना चाहिये जो समझा सके कि क्या हो रहा है, और इस आन्दोलन को छोटा करने में सहायता दे। लेकिन, दुर्भाग्यवश, पश्चिम का अनुकरण करने की अन्धी महत्त्वाकांक्षा में वह जड़वादी बन गया है और अपनी आत्मा की उपेक्षा कर रहा है।

मैं आशा करता हूँ कि काश्मीर की लड़ाई भारत और पाकिस्तान के एक होने की ओर पहला क़दम है।

'परम प्रज्ञा' इस पर नज़र रखे हुए है।

माना यह जाता है कि जगत् में आध्यात्मिक जीवन स्थापित करने के लिए भारत संसार का गुरु है। लेकिन, माताजी, यह उच्च पद पाने के लिए उसे राजनीतिक, नैतिक और भौतिक दृष्टि से इसके योग्य होना चाहिये, है न?

निःस्सन्देह—और अभी इसके लिए बहुत कुछ करना बाक़ी है।

हमारी वर्तमान सरकार की इतनी विशृंखल दशा क्यों है? क्या यह अच्छे के लिए परिवर्तन का, 'सत्य' के शासन के आने का चिह्न है?

समस्त धरती पर 'सत्य' की शक्ति के दबाव के कारण ही हर जगह

अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता और मिथ्यात्व उछल रहे हैं जो रूपान्तरित होने से इन्कार कर रहे हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९९-४००

भारत की नियति

१. अगर आपसे, संक्षेप में, केवल एक ही वाक्य में, भारत के बारे में अपनी अन्तर्दृष्टि को प्रस्तुत करने के लिए कहा जाये, तो आपका क्या उत्तर होगा?

भारत की सच्ची नियति है जगत् का गुरु बनना।

२. इसी तरह, अगर आपसे कहा जाये कि आपको वास्तविकता जिस रूप में दिखायी देती है उस पर एक ही वाक्य में टिप्पणी करें, तो आप क्या कहेंगी?

वर्तमान वास्तविकता एक बड़ा मिथ्यात्व है जो एक शाश्वत सत्य को छिपाये हुए है।

३. आपके मतानुसार, कौन-सी तीन बाधाएँ अन्तर्दृष्टि और वास्तविकता के बीच खड़ी हैं?

(क) अज्ञान; (ख) भय; (ग) मिथ्यात्व।

४. स्वाधीनता के बाद सब मिला कर भारत ने जो प्रगति की है उससे आप सन्तुष्ट हैं?

नहीं।

५. आधुनिक काल में हमारी सबसे उत्कृष्ट उपलब्धि कौन-सी है? आप उसे इतना महत्त्वपूर्ण क्यों समझती हैं?

'सत्य' के लिए प्यास का जागना। क्योंकि 'सत्य' के बिना कोई वास्तविकता नहीं होती।

६. उसी प्रकार, क्या आप यह बता सकती हैं कि सबसे दुःखद असफलता कौन-सी है? किन कारणों से आप उसे इतना दुःखद समझती हैं?

सच्चाई का अभाव। क्योंकि सच्चाई का अभाव नाश की ओर ले जाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८९-९०

भारतीय शिक्षा के आधारभूत प्रश्न

१. वर्तमान और भावी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को दृष्टि में रखते हुए, भारत को शिक्षा में किस चीज़ को अपना लक्ष्य बनाना चाहिये?

अपने बालकों को मिथ्यात्व के त्याग और 'सत्य' की अभिव्यक्ति के लिए तैयार करना।

२. किन उपायों से देश इस महान् लक्ष्य को चरितार्थ कर सकता है? इस दिशा में आरम्भ कैसे किया जाये?

जड़-द्रव्य को 'आत्मा' की अभिव्यक्ति के लिए तैयार करो।

३. भारत की सच्ची प्रतिभा क्या है और उसकी नियति क्या है?

जगत् को यह सिखाना कि जड़-द्रव्य तब तक मिथ्या और अशक्त है जब तक वह 'आत्मा' की अभिव्यक्ति न बन जाये।

४. माताजी भारत में विज्ञान और औद्योगिकी की प्रगति को किस दृष्टि से देखती हैं? मनुष्य के अन्दर 'आत्मा' के विकास में क्या वे योगदान दे सकते हैं?

इसका एकमात्र उपयोग है जड़-द्रव्य को 'आत्मा' की अभिव्यक्ति के लिए अधिक मज़बूत, अधिक पूर्ण और अधिक प्रभावशाली बनाना।

५. देश राष्ट्रीय एकता के लिए काफ़ी चिन्तित है। माताजी की क्या दृष्टि है? भारत अपने तथा जगत् के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कैसे पूरा करेगा?

सभी देशों की एकता जगत् की अवश्यम्भावी नियति है। लेकिन सभी देशों की एकता के सम्भव होने के लिए पहले, हर देश को अपनी एकता चरितार्थ करनी होगी।

६. भाषा की समस्या भारत को काफ़ी तंग करती है। इस मामले में हमारा उचित मनोभाव क्या होना चाहिये?

एकता एक जीवित तथ्य होना चाहिये, मनमाने नियमों के द्वारा आरोपित वस्तु नहीं। जब भारत एक होगा, तो सहज रूप से उसकी एक भाषा होगी जिसे सब समझ सकेंगे।

७. शिक्षा सामान्यतः साक्षरता और एक सामाजिक प्रतिष्ठा की चीज़ बन गयी है। क्या यह अस्वस्थ प्रवृत्ति नहीं है? लेकिन शिक्षा को उसका आन्तरिक मूल्य और उसका सहज आनन्द कैसे प्रदान किया जाये?

परम्पराओं से बाहर निकलो और अन्तरात्मा के विकास पर ज़ोर दो।

८. आज हमारी शिक्षा कौन-से दोषों और भ्रान्तियों का शिकार है? हम उनसे यथासम्भव कैसे बच सकते हैं?

क) सफलता, आजीविका और धन को दिया जाने वाला प्रायः ऐकान्तिक महत्त्व।

ख) 'आत्मा' के साथ सम्पर्क और सत्ता के सत्य के विकास और उसकी अभिव्यक्ति की परम आवश्यकता पर ज़ोर दो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९५-९७

परम माँ,

हमारा लक्ष्य भारत के लिए ऐकान्तिक शिक्षा नहीं है बल्कि सारी मानवजाति के लिए सारभूत और मौलिक शिक्षा है। मगर, क्या यह ठीक नहीं है माताजी, कि अतीत के अपने सांस्कृतिक प्रयासों और उपलब्धियों के द्वारा अर्जित विशिष्ट योग्यता के कारण यह शिक्षा भारत का सौभाग्य है और अपने तथा जगत् के प्रति इसकी कुछ विशेष ज़िम्मेदारी है? बहरहाल, मेरा ख़याल है कि वह सारभूत शिक्षा ही भारत की राष्ट्रीय शिक्षा होगी। वास्तव में, मैं यह मानता हूँ कि इसी भाँति हर बड़े राष्ट्र में अपनी विशेष विभिन्नताओं के आधार पर एक राष्ट्रीय शिक्षा होगी।

क्या यह ठीक है और क्या माताजी इसका समर्थन करेंगी?

हाँ, यह बिलकुल ठीक है और अगर मेरे पास तुम्हारे प्रश्न का पूरा उत्तर देने का समय होता तो मैं जो उत्तर देती उसका यह एक भाग होता।

भारत के पास आत्मा का ज्ञान है या यूँ कहें था, लेकिन उसने जड़-द्रव्य की अवहेलना की और उसके कारण कष्ट भोगा।

पश्चिम के पास जड़-द्रव्य का ज्ञान है पर उसने 'आत्मा' को अस्वीकार किया और इस कारण बुरी तरह कष्ट पा रहा है।

पूर्ण शिक्षा वह होगी जो, कुछ थोड़े-से परिवर्तनों के साथ, संसार के सभी देशों में अपनायी जा सके। उसे पूर्णतया विकसित और उपयोग में लाये हुए जड़-द्रव्य पर 'आत्मा' के वैध अधिकार को वापस लाना होगा।

मैं जो कहना चाहती थी उसका संक्षेप यही है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३९२, ९५

मैं चाहूँगी कि वे (सरकार) योग को शिक्षा के रूप में स्वीकार कर लें, यह केवल हमारे लिए नहीं, देश-भर के लिए अच्छा होगा।

भौतिक द्रव्य का रूपान्तर होगा, वह ठोस आधार होगा। जीवन दिव्य बनेगा। भारत को नेतृत्व करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २७३-७४

केवल भारत की आत्मा ही इस देश को एक कर सकती है। बाह्य रूप में भारत के प्रदेश स्वभाव, प्रवृत्ति, संस्कृति और भाषा, सभी दृष्टियों से बहुत अलग-अलग हैं और कृत्रिम रूप से उन्हें एक करने का प्रयत्न केवल विनाशकारी परिणाम ला सकता है।

लेकिन उसकी आत्मा एक है। वह आध्यात्मिक सत्य, सृष्टि की तात्त्विक एकता और जीवन के दिव्य मूल के प्रति अभीप्सा में तीव्र है, और इस अभीप्सा के साथ एक होकर सारा देश अपने ऐक्य को फिर से पा सकता है। उस ऐक्य का अस्तित्व प्रबुद्ध मानस के लिए कभी समाप्त नहीं हुआ।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ४०२

देश-भक्ति के भाव हमारे योग के साथ असंगत नहीं हैं, उलटे, अपनी मातृभूमि की शक्ति और अखण्डता के लिए कामना करना बिलकुल उचित भाव है। यह कामना कि वह प्रगति करे और पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ, अपनी सत्ता के सत्य को अधिकाधिक अभिव्यक्त करे, सुन्दर और उदात्त भाव है जो हमारे योग के लिए हानिकर नहीं हो सकता।

लेकिन तुम्हें उत्तेजित नहीं होना चाहिये, तुम्हें समय से पहले कर्म में न कूद पड़ना चाहिये। तुम प्रार्थना कर सकते हो और करनी भी चाहिये, सत्य की विजय के लिए अभीप्सा और संकल्प कर सकते हो और, साथ ही, अपने दैनिक कार्य को जारी रख सकते हो और धीरज के साथ ऐसे अचूक चिह्न के लिए प्रतीक्षा कर सकते हो जो तुम्हें कर्तव्य-कर्म का निर्देशन दे।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८७

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

सितम्बर

१. पहले अपने-आपको पूर्णतः जानना सीखो, फिर अपने-आप पर पूर्ण नियन्त्रण रखना सीखो। तुम हर क्षण अभीप्सा करके यह पा सकते हो। आरम्भ करने के लिए कभी 'बहुत जल्दी' नहीं होती और जारी रखने के लिए कभी 'बहुत देर' नहीं होती।

२. हमें अपनी चेतना का आसन उच्चतर सत्ता में रखना चाहिये और हम जो कुछ करें वहीं से करें। हम निम्नतर, अन्ध और स्वार्थपूर्ण गतिविधियों और प्रतिक्रियाओं को अपना काम बिगाड़ने न दें।

३. कामनाओं के आगे झुकना उनसे पिण्ड छुड़ाने का तरीक़ा नहीं है। कामनाओं का कहीं अन्त नहीं है। प्रत्येक सन्तुष्ट कामना के स्थान पर एक और आ जाती है और वे अधिकाधिक शोर मचाती हैं।
इस निम्नतर चेतना में से बाहर निकल कर, उच्चतर चेतना में उठ कर, कामनाओं पर विजय पाकर ही तुम उनसे पिण्ड छुड़ा सकते हो।

४. अगर धरती पर कभी कोई दिव्य वस्तु प्रतिष्ठित करनी है तो सभी निम्नतर गतियों को जीतना होगा।

५. तुम अपने-आपको दुर्बल बना कर नहीं, केवल बल, सन्तुलन और शान्ति में ही अपनी कामनाओं पर विजय पा सकते हो।

६. जीवन की समस्त कटुता **हमेशा** केवल अहंकार से आती है जो पदच्युत होने से इन्कार करता है।

७. तुम यह आशा नहीं कर सकते कि सारी दुनिया तुम्हारी सेवा में हो और सब कुछ उस तरह हो जिसे तुम अपने लिए ज़्यादा सुविधाजनक मानते हो।
तुम्हें हर एक के साथ और हर चीज़ के लिए लड़ना-झगड़ना छोड़ देना चाहिये अन्यथा तुम योग में कुछ भी प्रगति करने की आशा कैसे कर सकते हो?

८. यह वृत्ति अपनाओ : किसी व्यक्तिगत झगड़े में किसी का पक्ष मत लो। केवल 'दिव्य शान्ति', 'सामञ्जस्य', 'प्रकाश' और 'सुख' के

बारे में सोचो और उनके अधिकाधिक पवित्र और शान्त यन्त्र बनो।

९. तुम्हें अपनी चेतना को विस्तृत करना चाहिये और यह समझना चाहिये कि हर एक का अपना ही सिद्धान्त होता है। व्यक्तिगत इच्छाओं के सुखद संयोजन में समझ, सहानुभूति और सामञ्जस्य की भूमि खोजना ज़रूरी है न कि यह कोशिश करना कि सभी एक जैसी इच्छाएँ और एक जैसे कर्म हों।

१०. उत्तरोत्तर सामञ्जस्य की स्थापना में जो मुख्य बाधाएँ हैं उनमें से एक है अपने विरोधी के आगे यह सिद्ध करने की आतुरता कि वह ग़लत है और हम ठीक हैं।

११. हर समस्या के लिए एक ऐसा समाधान है जो हर एक को सन्तुष्ट कर सकता है, लेकिन इस आदर्श समाधान को पाने के लिए हर एक को औरों के साथ मिल कर उन पर अपनी पसन्द लादने की इच्छा की जगह उस समाधान को चाहना चाहिये।

अपनी चेतना का विस्तार करो और सबकी सन्तुष्टि के लिए अभीप्सा करो।

१२. आवश्यक जानकारी प्राप्त होने से पहले मन को अचञ्चल रखना और जल्दबाज़ी में निष्कर्ष निकालने से बचना हमेशा अच्छा है।

१३. तुम्हारे अन्दर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण होना चाहिये और तुम्हें अपने साथियों के साथ सहयोग देना सीखना चाहिये। उनके अन्दर जो कुछ घटिया दीखता हो उसका मज़ाक उड़ाने की जगह उनकी सहायता करना और उन्हें ऊँचा उठाना चाहिये।

१४. औरों की सहायता करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है अपने-आपको रूपान्तरित करना। तुम पूर्ण बनो तो तुम संसार में पूर्णता लाने की स्थिति में होगे।

१५. औरों की मनोदशाओं और सनकों को अपने ऊपर प्रभाव न डालने देने में तुम बिलकुल ठीक हो। तुम्हें हमेशा इन सब चीज़ों से ऊपर भगवान् की 'उपस्थिति', 'प्रेम' और उनके 'रक्षण' की अनुभूति में उठना चाहिये।

१६. भगवान् के प्रति निवेदित किये गये कार्य के द्वारा ही चेतना सबसे अच्छी तरह विकसित होती है।

१७. तुम्हें कार्य भगवान् के प्रति अर्घ्य के रूप में करना चाहिये और उसे अपनी 'साधना' का अंग मानना चाहिये। उस भाव के साथ काम के स्वरूप का कोई महत्त्व नहीं और तुम आन्तरिक उपस्थिति से सम्पर्क खोये बिना कोई भी काम कर सकते हो।

१८. सरल और शान्त हृदय और स्थिर मन के साथ अपना कार्य जारी रखो। अभीप्सा आवश्यकता के अनुसार धीरे-धीरे आयेगी।

१९. उन सबको आशीर्वाद जो ईमानदारी, सद्भावना, नियमितता और सुरुचि के साथ काम करते हैं और जो सीखना और प्रगति करना चाहते हैं, उन सबको आशीर्वाद।

२०. हमारे हृदय की गहराई में हमेशा महान् आनन्द रहता है और हम उसे हमेशा वहाँ पा सकते हैं।

२१. ज़्यादा निरन्तर रूप से भागवत उपस्थिति पर एकाग्र रहो। भागवत कृपा ज़्यादा सहज होगी।

२२. भगवान् तुम्हें जो देते हैं उसे हमेशा हर्ष के साथ स्वीकार करो।

२३. ... कठोर नियमों के कारण पैदा हुई कठिनाइयों की अपेक्षा, निर्विघ्न, सामञ्जस्यपूर्ण काम ज़्यादा अच्छा होता है—लेकिन यह भी कोई निरपेक्ष नियम नहीं है—आदर्श स्थिति तो यह है कि हर अवसर पर आन्तरिक नीरवता में ऊपर से पथ-प्रदर्शन लिया जाये।
सतत अभ्यास और सद्भावना के साथ यह सम्भव हो जाता है।

२४. ... मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अपने अन्दर जाना और वहाँ से शक्ति पाना अपने-आपको उत्तेजित कार्य में फेंकने की अपेक्षा कहीं ज़्यादा सहायक होता है।

२५. **जितना कम बोला जाये, उतना ही अच्छा।** और यदि किसी दूसरे को या दूसरों को कुछ बताना अनिवार्य हो तो बुद्धिमत्ता इसी में है कि अनिवार्य शब्द ही बोले जायें, उससे अधिक कुछ नहीं।

२६. जब तुम्हें बाहरी परिवर्तनों की ज़रूरत होती है तो इसका अर्थ यह होता है कि तुम अन्दर से प्रगति नहीं कर रहे हो, क्योंकि जो अन्दर से प्रगति करता है वह हमेशा एक-सी बाहरी परिस्थितियों में जी सकता है जो उसके आगे हमेशा नये-नये सत्यों को प्रकट करती रहती हैं।

२७. ... परोपकारी के आवेश से अधिक भयंकर और कोई आवेश नहीं

होता, किसी प्रकार के अहंकार को जड़-मूल से हिलाना उतना कठिन नहीं होता जितना कि पुण्य के जमे हुए अहंकार को। क्योंकि यह अपनी दृष्टि में और दुनिया की दृष्टि में भी उचित प्रतीत होता है और इसलिए यह किसी उच्चतर विधान के सामने सिर झुकाने की आवश्यकता अनुभव नहीं कर सकता।

२८. प्रगति का अवसर हमेशा रहता है। वस्तुतः कठिनाइयाँ तभी उठती हैं जब उच्चतर प्रज्ञा देख लेती है कि हम इस पर विजय पाने के योग्य हैं।

२९. जीवन में हर चीज़ इस तरह व्यवस्थित है कि हम अधिक-से-अधिक तेज़ी से आगे बढ़ सकें। अगर हमारा मनोयोग पूरी तरह जाग्रत् रहे तो हम सभी परिस्थितियों से लाभ उठा सकते हैं।

३०. श्रीमाँ का प्रेम और उनकी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ हैं, उन्हें ग्रहण करना तुम्हारा काम है। किसी ऐसी चीज़ को न आने दो जो तुम्हें बन्द कर दे या तुम्हारे और माँ के बीच आ खड़ी हो। जब तुम उदास हो तो उनकी ओर मुड़ो, अपने-आपको उनके प्रति खोलो, उनकी शक्ति को बुलाओ और उसे ग्रहण करो।

"मेरी नन्हीं मुस्कान" के नाम पत्र

('मेरी नन्हीं मुस्कान' के नाम, यह उन पहले बच्चों में से थी जिन्हें आश्रम में प्रवेश मिला था। यह चौदह वर्ष की अवस्था में आयी थी। नन्हीं मुस्कान बहुत वर्षों तक माताजी के कपड़ों पर कशीदाकारी करती रहीं और फिर उनकी व्यक्तिगत सेविकाओं में से एक हो गयीं। उन्होंने सत्रह वर्ष की अवस्था में माताजी को पत्र लिखना शुरू किया था।)

मेरी प्यारी माँ,

आज मैंने नौ घण्टे तक शरीर से आपकी प्रार्थना की।

माताजी, पिछले दो दिनों से मुझे कुछ थकान का अनुभव हो रहा है। मेरे हाथ कुछ धीमे पड़ गये हैं।

क्या तुम्हें नहीं लगता कि थोड़ा आराम करने का विचार ज़्यादा अच्छा होगा? यानी, या तो पूरे दिन आराम करो या हर रोज़ दो घण्टे कम काम करो।

१३ अप्रैल १९३३

मेरी प्यारी माँ,

नहीं, मैं आराम नहीं करना चाहती। आज मैंने अपने शरीर से दस घण्टे तक आपकी प्रार्थना की।

तब कूए की पद्धति को अपनाओ और दोहराओ, "मैं थकी नहीं हूँ, मैं थक ही नहीं सकती क्योंकि मुझे सुरक्षा प्राप्त है!"

१४ अप्रैल १९३३

मेरी प्यारी माँ,

'क' ने मुझे बतलाया कि फ़्रेम आज शाम तक तैयार हो जायेगा। आज मैंने ब्लाउज़ पर नौ घण्टे काम किया।

मेरी नन्हीं मुस्कान, तुम्हें इतना अधिक काम न करना चाहिये कि थकान की हद तक पहुँच जाओ।

१० जून १९३३

मेरी प्यारी माँ,

न केवल यह कि मैं सारे दिन काम करती हूँ बल्कि मैं अधिक-से-अधिक काम करना चाहती हूँ और आशा करती हूँ कि मुझे थकान न आयेगी। अगर मैं हर रोज़ पूरे दिन काम न करूँ तो मैं अपनी प्यारी-प्यारी माँ के लिए जो बड़ी और सुन्दर चीज़ें बनाना चाहती हूँ उन्हें कैसे बना पाऊँगी? मैं अपना समय नष्ट करूँ तो मेरे सपने कैसे साकार होंगे?

माताजी, क्या आप जानती हैं कि मैं आपके कमरे के लिए बड़े-बड़े परदों पर कशीदा करने वाली हूँ? एक बार आपने मुझे बतलाया था कि जापानी लोग अपनी दीवारों को कशीदेवाले परदों से मढ़ देते हैं।

तुम्हारी बात ठीक है। अपने सबसे सुन्दर सपनों को साकार करने से अच्छा और कुछ नहीं है और, कोई अन्य चीज़ हमें इससे ज़्यादा मज़बूत और सुखी नहीं बना सकती!

११ जून १९३३

मेरी प्यारी माँ,

माँ, क्या आप जानती हैं कि इन दो ब्लाउज़ों पर, मैंने उन्हें बिगाड़े बिना, इस्त्री की है। यह पहली बार है कि मैंने एक ब्लाउज़ पर इस्त्री की है। माँ, मुझे इसके लिए 'शाबाशी' दो। कल मैं दूसरे ब्लाउज़ पर काम शुरू करने वाली हूँ।

यह तो "शाबाशी" से अधिक का पात्र है! आज सवेरे सचमुच मैं सराहना से भर गयी थी। यह बहुत सुन्दर है—चिड़ियाँ बहुत सुन्दर और सजीव हैं। मुझे उनके प्यारे-प्यारे छोटे सिर, जिन पर चाँदी की कलगियाँ हैं, बहुत सुन्दर लगे, मूल चित्र की अपेक्षा बहुत ज़्यादा सुन्दर। छोटे-छोटे हीरे भी बहुत सुन्दर हैं और साड़ी पर चाँदी के साथ वे अद्‌भुत लगेंगे। तुमने इस्त्री कहाँ की थी? अच्छा है कि तुम यह सीख रही हो।

२१ जून १९३३

मेरी प्यारी माँ,

आज सवेरे मैंने आपके लिए एक "शमीज़" काटी। यह पहली बार है कि मैंने कोई 'शमीज़' काटी है। 'क' इसे सी देगी और जब यह तैयार हो जायेगी, आप इसे पहन कर मुझे बतायेंगी कि यह ठीक कटी है या नहीं। क्योंकि अगर यह ठीक तरह कटी हो तो मैं बिना हिचके और चीज़ें भी काट सकती हूँ।

आज भी मैं सारे दिन काम करती रही।

मैं बहुत ख़ुश हूँ कि तुमने यह करना भी सीख लिया है। "सारे दिन" से तुम्हारा मतलब क्या है? मैं आशा करती हूँ कि यह नौ घण्टे से ज़्यादा नहीं है, क्योंकि वह अपने-आपमें लम्बी अवधि है और उसे बढ़ाना न चाहिये।

२६ जून १९३३

माँ, आज सवेरे से मेरी बाईं आँख की पुतली में कुछ दर्द हो रहा है।

तुम्हें दिन में तीन बार अपनी आँख बोरिक एसिड के गरम पानी से धोनी चाहिये। और दो-तीन दिन तक कशीदे का काम कम करो। ठीक वैसा ही करो जैसा मैं कहती हूँ और याद रखो कि तुम्हारा काम लगभग पूरी तरह तुम्हारी आँखों पर निर्भर है। अगर तुम्हारी आँखें किसी तरह ख़राब हो गयीं तो यह तुम्हारी सुन्दर कशीदाकारी की इतिश्री होगी! जब तुम्हारी आँखों में दर्द हो तो कुछ मिनटों के लिए उन्हें अपनी हथेलियों से ढक दो (दबाये बिना)। तुम्हें इससे बहुत आराम मिलेगा।

२७ जून १९३३

मेरी प्यारी माँ,

मुझे लगता है कि 'क' के लिए मैंने जो कष्ट उठाया वह सब व्यर्थ था। आज शाम को मैंने उसे यह समझाने में लगभग दो घण्टे लगाये कि चीज़ें स्पष्ट रूप से कैसे लिखी जायें। लेकिन व्यर्थ।

जब तुम किसी के लिए इस तरह कष्ट उठाओ तो वह कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। हो सकता है कि परिणाम तुरन्त न दिखायी दे, लेकिन निष्काम कर्म एक-न-एक दिन अपना फल लाता ही है।

२६ जुलाई १९३३

मेरी प्यारी माँ,

आज १५ अगस्त है, मैंने कुछ भी काम नहीं किया। मैं कल से शुरू करूँगी।

मेरा ख़याल है कि आज तुम्हें अपनी 'शानदार' साड़ी को देख कर गर्व का अनुभव हुआ होगा। वह सचमुच राजसी है। और मुझे अपनी नन्हीं मुस्कान और उसके सुन्दर काम पर गर्व है!

१५ अगस्त १९३३

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ९१-९५

चैत्य उद्घाटन

अपने "वार्तालापों" [१] में श्रीमाँ हृदय की गभीर शान्ति में अग्नि जलने की बात करती हैं। क्या यह अग्नि चैत्य सत्ता है?

अग्नि कोई सत्ता नहीं है—यह चैत्य अग्नि है, तीव्र अभीप्सा की स्थिति।

चैत्य सत्ता कहाँ स्थित है?

वह हृदय-चक्र के पीछे, गहराई में स्थित है।

कभी-कभी श्रीमाँ कहती हैं कि इस या उस व्यक्ति की चैत्य सत्ता अच्छी है। पर क्या यह तथ्य नहीं है कि सभी में चैत्य सत्ता भगवान् का ही एक हिस्सा है और इसलिए वह हमेशा अच्छी होती है? तो फिर श्रीमाँ किन्हीं विशेष मामलों में भेद क्यों करती हैं?

चैत्य सत्ता कुछ लोगों में वह इतने पर्याप्त रूप में शक्तिशाली होती है कि मानसिक और प्राणिक प्रतिरोधों को आसानी से जीत लेती है—जब कि कई दूसरों में यह कम विकसित होती है और उन्हें अधिक कठिनाई होती है।

क्या योग की शक्ति पहले चैत्य के द्वारा नहीं आती और फिर मन में तेज़ी से बदलाव लाती है?

यह आवश्यक नहीं है। ज़्यादातर लोग मन में काम करने वाली शक्ति से शुरू करते हैं—यह केवल तभी होता है जब पहले मन और प्राण को कुछ हद तक बदल दिया गया हो, तब चैत्य सामने आने के लिए तैयार होता है।

क्या चैत्य सत्ता मानसिक, प्राणिक और शारीरिक सत्ताओं की मदद के बिना अपने-आपको सीधा प्रकट कर सकती है?

मन, प्राण और शरीर अभिव्यक्ति के साधन हैं। निःसन्देह चैत्य स्वयं वस्तुओं

[१] श्रीमाँ के वार्तालापों का संग्रह 'श्रीमातृवाणी' (१ से १७ खण्ड) के नाम से छपा है।

को आन्तरिक रूप से या फिर स्वयं अपने स्तर पर अभिव्यक्त कर सकता है पर, शारीरिक स्तर पर अभिव्यक्त करने के लिए दूसरे भागों के माध्यम की ज़रूरत पड़ती है।

मन और प्राण को बदले बिना क्या चैत्य सत्ता को सामने लाना सम्भव नहीं है?

नहीं। अगर वे अपरिवर्तित रहें तो चैत्य को सामने लाने में बाधा डालते हैं।

आध्यात्मिक और चैत्य चेतना में क्या भेद है?

आत्मा मन के ऊपर की चेतना है, आत्मन् या 'स्व', जो हमेशा भगवान् के साथ एकात्मता रखता है, वह वह आध्यात्मिक चेतना है जो हमेशा भगवान् के साथ एकात्म होती है या कम-से-कम उनके साथ सम्पर्क में तो होती ही है।

चैत्य भगवान् से आयी एक चिनगारी है जो सभी चीज़ों में होती हैं और जैसे-जैसे मनुष्य विकसित होता जाता है वह उसमें उस चैत्य सत्ता, यानी अन्तरात्मा के रूप में बढ़ती और अभिव्यक्त होती जाती है जो हमेशा भगवान् और सत्य की खोज में रहती है और जब कभी और जहाँ कहीं उसकी भेंट भगवान् या सत्य से होती है, वह उनका प्रत्युत्तर देती है।

भगवान् और आत्मा में क्या भेद है?

भगवान् हर जगह, यहाँ तक कि अज्ञान में भी हैं। वे केवल आत्मा में ही नहीं, बल्कि मन, प्राण और शरीर में भी हैं। जो मन, प्राण और शरीर के पीछे खड़ी है, वही आत्मा है।

क्या अनेक चैत्य-स्तर हैं?

नहीं सिर्फ़ एक ही है।

जिस व्यक्ति की चैत्य चेतना पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुई होती, क्या वह अपनी प्रकृति की मूलभूत कठिनाइयों पर क़ाबू रा सकता है?

नहीं, अपने बल-बूते पर नहीं; लेकिन भागवत कृपा की सहायता से वह

यह कर सकता है।

क्या यह सच है कि अगर चैत्य सत्ता सामने आ जाये तो सभी सन्देह और कठिनाइयाँ तेज़ी से नष्ट की जा सकती हैं?

हाँ।

चैत्य सत्ता को सामने कैसे ला सकते हैं? ग़लत गतिविधियों के परहेज़ से क्या ऐसा हो सकता है?

वह नकारात्मक तरीक़ा है; सकारात्मक तरीक़ा है—परमात्मा के प्रति आज्ञाकारिता, भक्ति तथा समर्पण।

क्या शारीरिक चेतना को लचीला बना कर चैत्य सत्ता को हमेशा सामने लाकर रखा जा सकता है?

नहीं, बल्कि यह तो शरीर की चेतना पर आध्यात्मिक और मानसिक विकास के कार्य का परिणाम है।

आजकल मैं बहुत तीव्र दुःख का अनुभव कर रहा हूँ जो मेरी आँखों में आँसुओं का सैलाब ले आता है। इसमें कोई बेचैनी या अशान्ति नहीं होती, बल्कि होती है शान्ति और पवित्रता की भावना तथा इसके साथ जुड़ी होती है एक गहरी गम्भीरता । क्या इसी को कहते हैं चैत्य दुःख?

हाँ, इस तरह का चैत्य दुःख हो सकता है—परन्तु चैत्य आँसू दुःखदायी हों यह आवश्यक नहीं है, भावना और ख़ुशी के आँसू भी होते हैं।

—श्रीअरविन्द

... जो गुण तुम्हें आध्यात्मिक जीवन-यापन करने का अधिकारी बनाते हैं वे हैं, आन्तरिक सन्तुलन, अपने कर्म में सन्तुलन बनाये रखना और प्रत्येक विषय में संयत होना, सच्चा-ईमानदार, सत्यनिष्ठ होना।

—श्रीमाँ

स्वर-शिल्पी

(हमारे विद्यालय के अध्यापक, हृदय दा—जहाँ श्रीअरविन्द-श्रीमाँ की कृतियाँ पढ़ाते थे वहीं अंग्रेज़ी, इतिहास, भूगोल इत्यादि के भी बड़े ज्ञाता थे। हिन्दी-लेखन में भी वे क़लम के धनी थे। चुपके-चुपके कितना कुछ लिख गये हमारे हृदय दा। उन्हीं की बेजोड़ कहानी प्रस्तुत है—सं.)

वह ठहरा स्वर-शिल्पी, भगवान् ने अनुगृहीत किया है उसे अपने अलौकिक अप्रतिभ दान से। आशैशव उसने केवल स्वर की साधना की है, की है सुर की सृष्टि। पार्थिव वस्तु उसे चञ्चल न बना सकी। प्रकृति की सौन्दर्य-डाली को उसने एक दिन भी स्पर्श नहीं किया। केवल सुर की गूँज में ही खोये रखा अपने-आपको। दिग्-दिगन्त में छा जाता उसका निस्सीम ललित स्वर गोधूलि-आकाश के रंग की तरह। वह अनुपम स्वर मुखरित कर देता मनुष्य की गति के ताल को। निपुण की वीणा के प्रस्फुटित सुर की न्याईं मानों वह अनवरत सर्जन कर रहा हो दिव्य सुर का।

पृथ्वी के विशाल प्रान्त में उसकी यशोगाथा बिखरी पड़ी है एक दिशा से दूसरी दिशा तक। मुग्ध-जन गुञ्जन करते उसके आस पास। देश-देशान्तरों से आता उसे बुलावा। किन्तु लोगों का आकुल आग्रह उसके प्राण में स्फूर्ति का सञ्चार न कर पाता। गायक अपने स्वर में आत्म-विभोर हो गान करता। वह सुनता, कोई उसके स्वर में स्वर मिला कर मुरली पर तान दे रहा है। वह ढूँढ़ पाता कि वह मधुर स्वर-लहरी किस दिशा से उड़ती-तैरती आती। कितनी ही चाँदनी रातों में मेघ-वर्षा सुरभित-पुष्पित डाली ले उतर आती, नव यौवना सुन्दर प्रकृति के प्रांगण में कलरव का वितान उड़ाती। किन्तु स्वर-शिल्पी अपने भाव में लीन हो केवल उसे ही खोजता। उस रहस्यमयी मुरली का स्वामी कौन? निद्राविहीन, अश्रुसिक्त नयन-पल्लव। कातर-कण्ठ से गाता रहता वह निशानुनिश। जताता अपने प्राण की आकुल प्रार्थना। पर वह ढूँढ़े न पाता अपने वाञ्छित देवता को।

दिन जाये, रात जाये। और गायक निरत बेसुध। अपनी साधना में तल्लीन। अपने हृदय के देवता को गान की माला अर्पण करने में लवलीन।

... किसी एक रात के सुख-स्वप्न में उसकी पकड़ में आया उस गुप्त

ध्वनि का स्वामी। उसके मन का आक्षेप धुल गया, पुँछ गया। एक नूतन प्रेरणा प्रज्वलित हो उठी उसके मन-मन्दिर में। गान के ललित स्वर से उस छिपे देवता की पूजा करने की स्पृहा जाग उठी अन्तर में।

*

एक दिन भोले गायक को राजमहल से आया बुलावा। गायक स्तब्ध! राजा का आह्वान! अतीव अद्‌भुत! वह लज्जा से गड़ गया। वह क्या वहाँ जा सकेगा? वहाँ गा सकेगा? अपने आराध्य के लिए चर्चित दीप से क्या वह कर सकेगा दूसरे की नीराजना? सर नत हो गया! सोचता रहा... सोचता ही रहा...

एक अकल्पित आलोक-किरण अपने मृदुल स्पर्श से पुलकित-कम्पित कर गयी उसके सुर-निर्मित जगत् को।

*

प्रांगण में निबिड़ भीड़। सभी उसे घेरे खड़े। गायक को जाना ही पड़ेगा। उनके साग्रह अनुरोध को गायक टाल न सका। मन्त्र-मुग्ध वह चलने लगा उनके साथ, आगे-आगे।

ठसा-ठस भरा राज-दरबार। गायक ने कर जोड़ अपने इष्टदेव का स्मरण किया। आरम्भ हुई उसकी पूजा। अपूर्व लय-ध्वनि! स्वर-लहरी ने मृदुल आलोड़न से भर दिया प्रशान्त वातावरण को। खो गयी राजा की सुध-बुध। श्रोतृ-वृन्द काठ हो गया। गायक ने मानों अपनी कला द्वारा विश्व के सकल सम्पर्क से विच्छिन्न कर लिया हो स्वयं को। कोई नहीं वहाँ, हैं केवल 'वे' और 'उनका' शाश्वत सुर। राजा आकुल—कैसे झुला दें अपना अमूल्य रत्नहार अमर गायक की तृप्तिद कण्ठ-सीमा में?

दिन का प्रकाश म्लान हो चला। सूर्यदेव लौट चले। कहाँ? जहाँ इठलाती सन्ध्या, आतुर हृदय, पथराये नयन, बाट जोह रहे थे उनका। विहगों के कण्ठ में नीड़ लौट आने की तान बज उठी। और गायक का गान रुक गया। देव के चरणों में अर्पित हुई उसकी पूजा अकलुषित धारा के रूप में। तृप्ति-अञ्जन से अलंकृत थे उसके लोचन। राजा धीरे-धीरे उठ आये। आनन्द की तरल लहरें हिलोरें मार रही थीं उनके अन्तस्तल में।

ऐसा विचित्र गान उन्होंने कभी नहीं सुना था। गायक विनीत भाव में उठ खड़ा हुआ राजा के सम्मान में। आँसू अब भी झर रहे थे उसकी आँखों से शेफाली फूलों के झरने की तरह। राजा ने मणि-मुक्ता-खचित स्वर्णहार अपने गले से ले, डाल दिया विपन्न गायक के गले में। आनन्द-विभोर राजा कह उठे—यही तो है तुम्हारे लिए उपयुक्त श्रेष्ठ पुरस्कार!

स्वर-साधक ने नत हो राजा को प्रणति जतायी।

यह क्या! राजा स्तम्भित। परम विस्मय से अवलोकन करते रहे, अपने पहनाये बहुमूल्य कण्ठाभरण की ओर। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था अपनी आँखों पर।

निमेष ही में यह चमत्कार? गायक के गले में दोलायित यह दुष्प्राप्य आभूषण मुहूर्त में सद्यः-स्फुट वनफूल की माला में परिणत हो गया। गायक के अधरों पर एक स्निग्ध स्मिति खेलने लगी।

राजा ने जकड़ लिया अपने बाहुपाश में सुर के धनी को। जो राजाओं का राजा है उसी ने तो डाली है उसके गले में चिर कुसुमित वनफूलों की माला।

मणि-मुक्ताओं से अनुरञ्जित हार फूलों की माला के सामने हो गया म्लान और म्रियमान। राजा की आँखों से तप्त आँसुओं की धारा बहने लगी।

गायक वापस लौट आया।

तब से उस गायक का स्वर...

उसके सफल स्वर ने अन्तर की नीरवता में अपना डेरा बनाया। वह गान, वह लय, वह ध्वनि फिर कभी किसी ने नहीं सुनी।

अपने अनुराग से चिर बन्दी बना रहा अपने अन्तर-देवता के चरणों में वह अर्पित अपूर्व सुषम मधुर स्वर।

—हृदय

परमात्मा की कारीगरी तो देखो कितनी अजीब है,
हम सबको बना कर ख़ुद ग़ायब हो गया...
आँखें बनायीं देखने के लिए,
पर वह दिखता बन्द आँखों से है।

'नयी कोंपलें' :

यादें

कितनी सारी बातें
अनकही रह गयीं
कितने सारे अलफ़ाज़
अनसुने रह गये।

कभी वापस आ जाते
और कानों में गूँजते
कहने को करता दिल
मगर चुप कर बैठ जाते।

हवा की तरह
इधर से उधर
वे बहते जाते
वे गूँजते जाते।

एक सुन्दर-सा रहस्य लिये
वे फुदक रहे थे
एक सत्य की खोज में
झलक रहे थे वे।

मन ही मन वे
आनन्द दे रहे थे
एक अन्दर की मुस्कान
को सामने ला रहे थे।

न वापस आयेंगे
न दोहरायेंगे वे पल
केवल हमारे दिल में
यादें बन रह जायेंगे।

—शाम्भवी

मुसाफ़िर चल

मुसाफ़िर चल, आज बिना रुके तू चल
जिस कल के ग़म में हर पल
गँवा रहा है तू मायूसी में,
उसी कल का काला घूँघट उठा कर,
आज के सूरज की ज्योति से
अपनी मुस्कान तू भर।
मुसाफ़िर चल,
आसमान को अट्टहास से चीर कर तू चल।

मुसाफ़िर चल, दर्द को भुलाये तू चल,
तेरा जीवन है अनमोल, ढूँढ़ ले तू आने वाला पल,
कल के फूल अगर लगें आज शूल,
विश्वास की डोर अगर आसानी से जाये टूट,
तो वह विश्वास नहीं, प्यार नहीं, न है वह सच्ची यारी
वह हमेशा न रहे जारी।
तो रूठा है क्यों, क्यों मुँह है भारी,
भूत को छोड़ कर भविष्य की ओर तू बढ़...
मुसाफ़िर चल।

—आकाश साहा

प्रयत्न

रात ढलने को आयी। रात-भर जलता दीपक जब बुझने को हुआ तो उसकी लौ ने तेज़ी पकड़ी और फिर धीरे से बुझ गयी। पास रखे दीपदान ने दीपक से पूछा—"मित्र! जब बुझना ही था, तो इतना तेज़ प्रयत्न क्यों?" दीपक बोला—"मित्र! महत्त्व प्रयत्न की तीव्रता का है। मैंने बुझते-बुझते भी सघन अन्धकार से लोहा लिया तो उसे क्षणों के लिए ही सही, हरा पाने में सक्षम हुआ। यदि सभी इसी तीव्रता से प्रयत्न करें तो इस धरा से अन्धकार सदा के लिए चला जाये।" दीपक के त्याग का अर्थ दीपदान की समझ में तुरन्त आ गया। *—'अखण्ड ज्योति' से साभार*

वे अनपढ़ संसार को क्या नहीं सिखा गये!

उनके हाथ खुरदुरे, सचमुच शक्ति से भरपूर थे। वे विशाल हाथ बग़ीचे के पौधों को तराशने-छाँटने में जितनी सुन्दरता बिखेरते थे वे ही किसी अनसधे घोड़े को क़ाबू में लाने का हुनर भी दिखलाते थे। वे हाथ जितनी सफ़ाई से सवेरे-शाम अपने बच्चों का बिस्तर लगाते थे वे ही कुल्हाड़ी थामे, घण्टों लकड़ियाँ काटने में भी समर्थ थे। और मुझे सबसे कोमल और नरम वे खुरदुरे हाथ तब लगते जब मेरे कन्धे को दबाये मुझे आस-पास के जंगलों में घुमाने ले जाते। पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, मौसम के बारे में न जाने कितना ज्ञान बचपन में ही मैंने उन हाथों को थामे पा लिया था—वे दुनिया के सचमुच सबसे सुन्दर हाथ थे, और उन्होंने मेरे पिता का ज़िन्दगी के एक पहलू को छोड़ कर बाक़ी सभी दिशाओं में बड़ी लगन से साथ दिया, और वह पहलू था—वे हाथ लिखना नहीं जानते थे!!

मेरे पिता बचपन में ऐसे विद्यालय में गये जहाँ एक ग़लत जवाब को खुली हथेली पर दस बेंतें मार कर सुधारा जाता था। पता नहीं किस वजह से पाँच साल का वह दिमाग 'ए' 'बी' 'सी' 'डी' की उन आड़ी-तिरछी रेखाओं को कभी न समझ पाया...। घर के सुखद वातावरण में भी यह समस्या नहीं सुलझी। 'कोई बीमारी है इस बच्चे में' की दबी हुई आवाज़ों के गूँजने से पहले ही माता-पिता ने उसे विद्यालय से हटा कर खेतों पर लगा लिया। और बचपन से ही वे अपने पिता, यानी मेरे दादाजी के साथ छोटे-मोटे शिकार पर जाने लगे, खेत में बीज बोने से लेकर फसल काटने तक का सारा ज्ञान अपने अन्दर समेटने लगे, जब-जब घर पर होते तो माँ का हाथ बँटाने में भी पीछे न रहते—बर्तन माँजने से लेकर केक बनाने तक साथ देते। विद्यालय की डाँट-डपट, मार से पीछा छूटने का मेरे पिता को जितना उत्साह और जितनी ख़ुशी थी, उनके माता-पिता को उतनी ही दुश्चिन्ता। कभी-कभी जब वे अपने विषय में उनकी घुसुर-पुसुर सुनते तो सोचते—"क्या धरा है इस ऊल-जलूल पढ़ाई में। न वे बेंतवाले मास्ट र मुझसे ख़ुश थे न मैं उनसे। अब उनकी भी चिन्ता टली और मेरी भी बला!" लेकिन अपना मत वे अपने चिन्तित माता-पिता के सामने थोड़े ही प्रकट कर सकते थे! ये सारी बातें तो बड़े ध्यान से सुनता था उनका वह

सबसे प्यारा दोस्त जो जवाब में हमेशा हिनहिना कर अपनी भी स्वीकृति जोड़ देता!

मेरे ख़ुशमिज़ाज पिता पूनो के चाँद की तरह बढ़ने लगे। साथ-साथ बढ़ने लगी माता-पिता की यह चिन्ता, "पढ़े-लिखे बिना यह बच्चा आदमी कैसे बन पायेगा भला?" और जब-जब यह चिन्ता मुखर हो उठती, वे अपने घोड़े के कान में जा फुसफुसाते—"रॉकी, बड़ा होकर क्या मैं घोड़ा बन जाऊँगा?" रॉकी हिनहिना कर हँस पड़ता।

पलक झपकते न झपकते दिन महीनों से गुज़रते हुए सालों में बदलने लगे। पाँच साल का वह बच्चा २० साल के नौजवान में पनप उठा, इस दौरान माता-पिता ने पचासों दफ़ा अपने लाड़ले के सामने अक्षरों की दुनिया के दरवाज़े खोलने की कोशिश की, लेकिन उसने उसमें झाँकना भी न चाहा। मन मसोस कर माता-पिता को इस दिशा में अपनी हार माननी पड़ी, लेकिन बाक़ी सभी क्षेत्रों में वह बालक अपनी उम्र के बच्चों से कई मील आगे निकल चुका था! "अक्षर-ज्ञान और पढ़ाई-लिखाई ही सब कुछ नहीं है, वह दूसरी दिशाओं में ख़ूब चमक रहा है"—कह कर माता-पिता ने समाज के शुभचिन्तकों से अपने कान रूँध लिये। बात सोलहों आने सच ही थी—मेरे पिता क्या नहीं जानते थे? उनके साथ तारों-भरे आसमान को मुँह उठा कर टकटकी लगाये देखो और सितारों की दुनिया का ज्ञान बटोर लो, हरी-भरी धरती को निहारो तो धीरे-धीरे खेत-खलिहान की पूरी जानकारी हासिल कर लो। यही नहीं, वे मौसम को भी ख़ूब अच्छी तरह पहचानते थे। उधर बचपन से ही घुड़सवारी के शौक़ीन वे दूर-दराज़ जगहों का चक्कर लगा कर ज्ञान की अपनी सम्पत्ति को लगातार बढ़ाते ही जा रहे थे, और पारखी तो ऐसे थे कि आदमी को तुरन्त ताड़ लेते... तब भी औरों की नज़रों में वे अनपढ़ थे!!

ख़ैर, दुनिया जो चाहे कह ले, लेकिन उनकी भावी पत्नी ने उस हीरे को तुरन्त पहचान लिया। दोनों विवाह-सूत्र में बँध गये। कुछ ही वर्षों में हम तीन भाई-बहनों से उनका घर सज गया। मैं था सबसे बड़ा। बचपन से ही उन सुडौल, बड़ी-बड़ी हथेलियों को देख मैं हमेशा ख़ुश हो जाता। उन मज़बूत हाथों ने हम भाई-बहनों को सैकड़ों बार गिरने से बचाया, थपथपा कर लोरियाँ सुनायीं और हवा में उछाल-उछाल कर आकाश को छूने का

हौसला जगाया, लेकिन वे ही हाथ जब बचपन में हमें पढ़ाई-लिखाई के समय माँ के पास सरका देते तो हमें हैरानी होती और जब उसकी वजह समझ आयी तो उनकी मज़बूत कलाई को अपने अनसधे हाथ से थाम कर उनकी उँगलियों में पेंसिल फँसा कर, अपने नाम के अक्षर टेढ़े-मेढ़े आकार में उनसे लिखवाने की हम तीनों भाई-बहनों में होड़ मच गयी। वे हमारे सामने अपना सीधा हाथ बढ़ा तो देते लेकिन इस तोड़-मरोड़ से जल्दी ही अनख कर, मैदान छोड़, भाग खड़े होते।

तब हम बच्चे थे, हमारे लिए सारा जीवन बस आनन्द ही आनन्द था —माता-पिता के दुलार में नहाते, कपड़े-लत्ते, खाने-पीने की न कोई परेशानी थी न हमारे जीवन में चिन्ता नाम का कोई शब्द ही था। लेकिन उस दिन मेरे दिल में खलबली मच गयी। मैंने देखा, पिता उस बन्द कमरे में अकेले बैठे सबसे छोटी बहन की किताब हाथ में लिये, उसमें आँखें गड़ाये मानों शब्दों को अपने अन्दर उतारने की कोशिश कर रहे थे, उनकी साँसें तेज़ चल रही थीं, दस मिनट किताब को हाथ में कसे वे न जाने क्या बुदबुदा रहे थे, फिर एकाएक आँखों को हथेलियों से ढाँप कर वे रो उठे—"ईश्वर, ईश्वर! एक बच्ची की सरल से सरल किताब से भी मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ पायेगा क्या?"

मैं ठगा खड़ा रह गया। भाई-बहनों में सबसे बड़ा था, समझदार था, पिता को चुप कराने अन्दर नहीं गया, सीधा माँ के पास जाकर दुःख उँडेला, वे भी बड़ी उदास हो गयीं। "हमें कुछ करना चाहिये माँ"—मैं भी रो पड़ा। "बेटे, यह समझ लो कि तुम्हारे पिता बस पढ़ाई-लिखाई के सिवा दुनिया का हर काम जानने की हैसियत रखते हैं, और कई दिशाओं में पारंगत भी हैं। उनकी इस एक अक्षमता को उन्हें अपने ही तरीक़े से सँभालने दो, इस विषय में हम उन्हें नहीं कुरेदेंगे।" माँ ने मुझे समझाया। फिर भी हम माँ-बेटे ने मिल कर एक योजना बनायी और उस दिन से जब-जब मौक़ा मिलता मैं उन्हें अपनी कहानियों की किताबों से बड़े हाव-भाव के साथ कहानियाँ पढ़ कर सुनाता, माँ ज़्यादातर बाइबल या दूसरे सूफ़ी-सन्तों की वाणी पढ़ कर सुनातीं। वे हम सबके ख़ुशी ही ख़ुशी के दिन थे...।

लेकिन हम सबके दुर्दिन भी सामने खड़े थे...! दूसरे महायुद्ध की दहशत हमारे गाँव तक भी फैल गयी। सब जगह अफ़रा-तफ़री का माहौल

छा गया—'कब क्या हो जाये', यही डर बड़ों के चेहरों पर लटकता था और उनकी देखादेखी सब बच्चे भी इस डर की चपेट में आ गये। रातो रात हम सब बड़े बन गये। घर के अन्दर सुरंगें खुद गयीं, उनमें अन्न जमा होने लगा, जब सायरनों की पैशाचिक सीटी सुनायी देती तो सब उन सुरंगों में दुबक जाते। इस डर ने ईश्वर को बहुत लोकप्रिय बना दिया, अब गाँव के गिरजाघरों में कभी सूनापन न दिखलायी देता। हम कभी विद्यालय जाते तो कभी घर पर ही मन मसोस कर बैठना पड़ता। राशन की कटौती हो गयी, वे निश्चिन्त दिन ढलने लगे, लेकिन कुल मिला कर हम बच्चे अपने खेल-कूद में ख़ुशी ढूँढ़ ही निकालते।

लेकिन उस दिन हमारे घर पर वज्रपात हो गया! पता नहीं कैसे, लेकिन हमारा खेत गाँव के किसी बदमाश ने कुछ लिखा-पढ़ी करके अपने हत्थे कर लिया। चारों तरफ़ छिड़े युद्ध के उन दिनों में कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगा कर क्या हासिल हो जाता भला? सभी सहृदयों ने मेरे माता-पिता को यह मार बर्दाश्त करने की सलाह दी। उस दिन मैं फूट-फूटकर रोया और उसी दिन उत्तरदायित्व मानों मेरे कन्धों पर आ बैठा—मैं घर का बड़ा बेटा हूँ, पिता का दायाँ हाथ—और उसी रोज़ पिता के बलिष्ठ हाथों के साथ १२ साल की मेरी हथेलियाँ भी जुड़ गयीं। हमने डाकघर में टिकट चिपकाये, लकड़ी के गोदामों में लकड़ियाँ काटीं, दफ़्तरों में फ़ाइलों के ढेर यहाँ से वहाँ पहुँचाये, बोझा ढोया; यानी लड़ाई के उन दिनों में हाथों का जहाँ जो काम मिल जाता हम दोनों उसी में लग जाते, क्योंकि किसी दफ़्तर की कुर्सी पर बैठ कर लिखा-पढ़ी का काम न वे कर सकते थे न उम्र के लिहाज़ से मैं। उधर माँ ने घर-घर खाना पका कर पैसा कमाया।

कुछ महीने पहले जो दिन पलक झपकाते न झपकाते कहाँ से कहाँ उड़ जाते थे उनके ही मानों अब पर कतर दिये गये थे—सरकाये न सरकते थे...।

लड़ाई छिड़ी हुई थी, रोंगटे खड़े करने वाली ख़बरों का ताँता लगा रहता था लेकिन हमारा गाँव शायद ज़्यादा सुरक्षित था, हमें अपना गाँव छोड़ कर कहीं और भागना नहीं पड़ा बल्कि हमारे ही गाँव में युद्ध के जहाज़ बनाने का काम बड़े पैमाने पर शुरू हो गया। हम पिता और पुत्र भी कोई स्थायी काम मिल जाने की उम्मीद के सहारे वहाँ जा पहुँचे। हमारे

जैसे सैकड़ों की वहाँ ज़रूरत थी, लगे हाथों हमें भी वहाँ काम मिल गया। हफ़्ते-भर बाद की बात है, जिस जहाज़ पर हम काम कर रहे थे उसमें बड़ी-बड़ी पाइप लाइनों का जाल बिछाने के निश्चय के वक़्त ऐसी समस्या आन खड़ी हुई कि मेज़ पर फैले उन विशाल काग़ज़ों पर झुके हुए बड़े-बड़े इंजीनियर भी आँकड़ों और चित्रों का सही ताल-मेल किसी तरह बैठा ही नहीं पा रहे थे। उत्सुकता मेरे पिता को भी खींच कर वहाँ ले गयी। उनके पल्ले वे अंक या अक्षर तो पड़े नहीं, लेकिन वह ख़ाका देख, लोगों के तर्क-वितर्क सुन कर उनका व्यावहारिक ज्ञान बोल उठा। अपना सुझाव उन्होंने हवा में उछाल दिया और सभी झुके हुए चेहरे एक साथ उनकी ओर घूम गये—मुझे पता नहीं क्या समस्या थी और क्या सुझाव, लेकिन उसी दिन कम्पनी के मालिक ने उनको निदेशक के विशेष पद पर बैठा दिया। उनके साथ हमेशा रहता था भाषा और आँकड़े समझाने के लिए एक कुशल सहायक, ज़्यादातर जिसकी सहायता के पहले ही सामने रखे चित्रों और ख़ाकों को देख पिता समस्या सुलझा देते—ऐसे थे मेरे पिता, बड़े-बड़े इंजीनियरों, किसानों, घुड़सवारों, और न जाने किन-किनको मात देने वाले, फिर भी समाज की दृष्टि से अनपढ़!!!

हमारे अच्छे दिन लौट आये, लड़ाई के बादल छँटने लगे, विद्यालय की नियमित चर्या शुरू हो गयी, जंगी जहाज़ बनाने की कम्पनी भी हमारे गाँव से उठने लगी, उनके मालिक ने पिता से जहाज़ बनाने की संसार की सबसे बड़ी कम्पनी में मुख्य निदेशक का पद सम्भालने की विनती की, लेकिन हमारा परिवार उस प्रस्ताव को स्वीकार न कर पाया—हम अपने गाँव की भीनी-भीनी ख़ुशबू से अलग नहीं होना चाहते थे।

उसके बाद तो पिता की ऐसी धूम मची कि हर दफ़्तर, हर फ़ैक्टरी, हर कम्पनी का मालिक अपने यहाँ काम करने के लिए उनके निहोरे करने लगा। और मैं बैठा-बैठा सोचा करता—"ये ही वे आदमी हैं जो पढ़ना-लिखना न जानने की वजह से इधर से उधर चपरासीगिरी किया करते थे??"

गाँववालों ने हमारा खेत हमें वापस दिलवा दिया, हमारे ख़ुशहाल संसार में और ख़ुशियाँ भर गयीं।

आज मेरे उस बचपन को बीते ३० साल गुज़र गये—हम तीनों भाई-बहनों के घर बस गये। ज़माने के साथ-साथ हमारे नज़रिये भी बदल गये।

जिस गाँव को पिता ने कभी न छोड़ा, हम सबको नौकरियों के जूए तले छोड़ना पड़ा—मेरे माता-पिता ने कभी इसका बुरा न माना। हम हमेशा छुट्टियाँ सपरिवार उनके साथ ही बिताते और वे ही हाथ, जिन्होंने हमारे बचपन को सहारा दिया था, आज हमारे बच्चों की उँगली थामने के लिए तत्पर थे।

महीने-भर पहले माँ गुज़र गयीं, वे बलिष्ठ हाथ जो ८५ साल की अपनी ज़िन्दगी में कभी न काँपे थे, लगातार काँपने लगे।

आज हम अपने पिता की अन्त्येष्टि में शामिल हो रहे हैं, किसी की अन्तिम विदाई के लिए ऐसा जमघट मैंने शायद ही कहीं देखा हो—न जाने कहाँ-कहाँ से लोग उन्हें अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाने चलते ही चले आ रहे थे।

ताबूत बन्द करने से पहले मेरा छोटा बेटा दौड़ता हुआ घर के अन्दर से कुछ लाया, घुटने टेक कर बोला—"दादा, यह क़लम लेते जाओ, भगवान् जी से ख़ूब पढ़ना-लिखना सीखना जिससे यहाँ के लोग तुम्हें कभी अनपढ़ न कह पायें...।" और क़लम उसने अपने दादा की उँगली में थमा दिया।

ठीक वे ही शब्द जो उसके दादाजी ने दो महीने पहले उसकी छठी सालगिरह पर उसे यही सुनहरा क़लम देते हुए कहे थे—"बेटे, अब से यह क़लम हमेशा अपने पास रखना, विद्यालय में ख़ूब पढ़ना-लिखना ताकि लोग तुम्हें कभी मेरी तरह अनपढ़ न कह पायें...!"

दुनिया की नज़रों में वे अनपढ़ संसार को क्या-क्या नहीं सिखा गये?

'पुरोधा', अक्तूबर २००६ से —वन्दना

तू दौड़ में अव्वल आये यह ज़रूरी नहीं,
तू सबको पीछे छोड़ दे यह भी ज़रूरी नहीं।
ज़रूरी है तेरा दौड़ में शामिल होना,
ज़रूरी है तेरा गिर कर फिर से खड़ा होना।
ज़िन्दगी में इम्तेहान बहुत होंगे
आज जो आगे हैं शायद कल तेरे पीछे होंगे।
बस तू चलना मत छोड़ना,
बस तू लड़ना मत छोड़ना।

चित्ते प्रसन्ने भुवनं प्रसन्नम्
चित्ते विषण्णे भुवनं विषण्णम्।
अतः अभिलाषी यदि त्वं सुखस्य
चित्तप्रसादे तर्हि प्रथमं यतस्व।।

मन प्रसन्न हो तो सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न दिखायी देता है।
मन खिन्न हो तो जग भी खिन्न प्रतीत होता है।
इसीलिए, सुख की अभिलाषा हो,
तो सबसे पहले मन प्रसन्न रखने का प्रयत्न करो।

अग्निशिखा
श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.
संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी
प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१
मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू,
पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत
सम्पादिका : वन्दना
Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70
दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८
Email: info@aurosociety.org
Website: www. aurosociety.org

Date of Publication: 1st September 2019
(Monthly) Rs. 30

Registered: PY/47/2018-20
RNI No.18135/70

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 4. My son's journey with this school started 5 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 4

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2018-19

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 onwards

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gurugram
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gurugram
+91 124 4681600, +91 9821786363